शुकसप्तति एक आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशिका :
डा0 श्रीमती मंजुला जायसवाल
रीडर, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्त्री :
श्रीमती हिमांशु द्विवेदी
एम.ए. संस्कृत
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2003

5A, बहादुरगंज
इलाहाबाद

डा० मंजुला जायसवाल
रीडर, संस्कृत विभाग
इ०वि०इलाहाबाद

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित करती हूँ कि (श्रीमती) हिमांशु द्विवेदी ने डी0फिल उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध–जिसका विषय–"शुकसप्तति–एक आलोचनात्मक अध्ययन" है– मेरे निर्देशों का निष्ठापूर्वक पालन किया है। इनकी उपस्थिति निर्धारित नियमों के अनुकूल हैं।

शोधकर्त्री का शोध मौलिक एवं उपयोगी है। मुझे श्रीमती हिमांशु द्विवेदीके इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0फिल उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने में कोई आपत्ति नहीं है।

विषय सूची

34. शम्भु ब्राह्मण की पारडी (साडी की कथा)
35 शम्बक वणिक् की कथा
36. नायिनी की रावडी की कथा
37 लाङ्गली (हलवाहा) और सुभगा की कथा
38 प्रियवद विप्र और खटिया के पावे की कथा
39 भूधर वणिक् और उसकी तराजू की कथा
40. सुबुद्धि एव कुबुद्धि की कथा
41. राजपुत्री का रोग और ब्राह्मण की मन्त्रसाधना की कथा
42. व्याघ्रमारी और सिंह की कथा
43 व्याघ्रमारी और जम्बुक की कथा
44 जम्बुक की मुक्ति की कथा
45 विष्णु ब्राह्मण और रतिप्रिया गणिका की कथा
46. करगरा और करगरा नाथ की कथा
47 करगरानाथ की कथा
48. मन्त्री शकटाल व दो घोडियो की कथा
49. मन्त्री शकटाल और छडी की कथा
50. धर्मबुद्धि और दुष्टबुद्धि की कथा
51. ब्रह्मव गाङ्गिल की सेना की कथा
52 जयश्री की कथा
53 चर्मकार की पत्नी की कथा
54. विप्र विष्णु के दूतकर्म की कथा
55. श्रीधर ब्राह्मण की कथा
56. सन्तक वणिक् की कथा
57. शुभङ्कर की कथा

चतुर्थ अध्याय

प्रथम अध्याय

कथा साहित्य की उत्तपत्ति और विकास

"कथा साहित्य की उत्पत्ति और विकास"

किसी सजीव सप्राण प्रेरणादायक भावाभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप तद्भार वहन समर्थ विधान में ही कला की सार्थकता है। मानव इतिहास की जाज्वल्यमान किरणें अतीत के अन्धकार को जहाँ एक ओर प्रकशित करती हैं अथवा उसकी एकाध चिनगारी के सहारे कल्पना जहॉ तक आगे जा सकती है वहॉ से लेकर आज तक कलाकार का यही उद्देश्य रहा है। ऐसा कोई लक्षण नहीं दिखलाई पडता जिससे यह कहा जा सके कि कला अपने इस चिरपरिचित ध्येय के प्रति आदर शैथिल्य भाव प्रगट कर रही है। अति–अति प्राचीन काल से मानव अपने भावाभिव्यक्ति के लिए अनेक माध्यमों का सहारा लेता आया है। इन माध्यमों में एक सशक्त माध्यम था– "कथा"। 'कथा' शैली के माध्यम से कवियों ने धर्म, दर्शन, नीति, आचार, व्यवहार, इतिहास, भूगोल आदि विवध विषयों का विवेचन प्रचुर मात्रा मे इस प्रकार के रोचक एवं उपदेशात्मक विधि से किया कि वह सस्कृत साहित्य में एक सहज और सशक्त शैली बन गयी।

यदि ये कहा जाय कि कथा की उत्पत्ति का इतिहास उतना ही प्राचीन है। जितना की सृष्टि की उत्पत्ति अथवा मानव उत्पत्ति के विकास का इतिहास तो यह गलत न होगा।

"श्री देवराज उपाध्याय" भी इसी तथ्य का समर्थन करते हुये कहते हैं कि कथा–साहित्य की उत्पत्ति मनुष्य के कौतुहल वृत्ति को संतुष्ट करने के लिये हुई होगी, पर यह कौतुक वृत्ति थोडा आगे बढ़ते ही मानव के भाग्य को, उसके आचरण को, उसके सुख–दु.ख के स्वरूप को पहचानने की प्रवृत्ति मे परिणत हो गयी होगी। उसी समय साहित्य का जन्म हुआ होगा। हो सकता है कथा आरम्भ में कथा मात्र रही हो, पर वह कथा साहित्य का युग नहीं रहा होगा, वह युग रहा होगा कथा मात्र का। केवल कथा सुन–सुनाकर कौतुक शान्त कर देने वाला, परन्तु जिस दिन

अमानवीय तत्वो की स्थिति अपने यहाँ बनाये रखते हुए भी मनुष्य की दिलचस्पी मनुष्य में बढने लगी होगी और यह संस्कार उगने लगा होगा कि इनका अस्तित्व मानव में सोयी शिथिल भाव या क्रिया तरङ्गों को जगह देता है। उसी दिन कथा साहित्य के प्रथम सुप्रभात का आर्विभाव हुआ होगा, और उसी दिन कथा साहित्य ने प्रथम किरणें देखी होगी।[1]

प्रारम्भ मे कथायें मौखिक रूप मे प्रचलित रही होगी जिनके विषय अधिकांशतः परी, प्रेत आदि रहे होंगे। वस्तुतः इस प्रकार की कहानियों के कथन द्वारा व्यक्ति आनन्द का अनुभव करता रहा होगा। यही कारण है कि सभ्य एवं असभ्य सभी जातियाँ कहानी कथन के द्वारा अपना, अपने परिवारजनों एवं मित्रों का मनोरञ्जन करती थी। यह प्रवृत्ति विश्व के अन्य भाषाओ के कथा–साहित्य के विकास के प्रसङ्ग में भी देखी जा सकती हैं।

वस्तुतः कथाओं का प्रारम्भ मनुष्य की कौतूहल या कौतुक प्रवृत्ति के फलस्वरूप ही हुआ। इस तथ्य का समर्थन "पंडित बलदेव उपाध्याय" ने भी किया है।[2] इस प्रकार संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत एक नवीन काव्य विधा का जन्म हुआ। वस्तुतः कथा मनुष्य की स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रागट्य का एक साहित्यक माध्यम है।

(1) कथा का प्रारम्भिक स्वरूप :

अतीत में जाने पर यह बात स्पष्ट होती है कि आरम्भिक काल में कथायें कथन और श्रवण की परम्परा से व्यवहृत होती हुई व्यक्ति के जिज्ञासा, मनोरञ्जन और आत्मपरितोष का साधन थीं, जैसे–जैसे मानव सभ्यता एवं समाज का विकास होता गया वैसे–वैसे इन कथाओं का सम्बन्ध मानव जीवन की अनुभूतियों एवं वाह्य

---

1 श्री देवराज, "कथा साहित्य में मेरी मान्यतायें" पृ. 17–26
2 संस्कृत साहित्य का इतिहास– पं बलदेव उपाध्याय

जगत के सत्य से सम्बद्ध होता गया। अब कथायें नीति, उपदेश, सत्य–आचरण, आत्मोन्नयन एवं सुधार की शिक्षा देने का माध्यम बनीं, साथ ही मनोरञ्जन करने के उद्देश्य से भी युग सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनीं।

कथा ने साहित्यिक विधा के आवरण को कब ओढा यह निश्चयपूर्वक कह सकना तो संभव नहीं है किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिस दिन मानव अपने भावाभिव्यक्ति के लिये सजग हुआ और जिस दिन उसमें साहित्यिक अभिरूचि का उदय हुआ, उसी दिन कथा–साहित्य का जन्म हुआ होगा। यह अवश्य है कि कथा–साहित्य की उत्पत्ति मनुष्य के जिज्ञासा वृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिये हुई होगी। उस काल में मानवीय अथवा अमानवीय दोनों तत्वों को कथा में स्थान दिया गया रहा होगा, किन्तु उस काल में मात्र कथा श्रवण के द्वारा ही व्यक्ति की कौतूहल प्रवृत्ति को शान्त कर दिया जाता था। कालान्तर में जिस समय मानव आत्माभिव्यक्ति के प्रति सजग हुआ उसी दिन कथा–साहित्य का जन्म हुआ होगा।

(2) <u>कथा का माध्यम</u> :

सामान्यतया जिस समय कथा–साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ होगा उस समय उसका स्वरूप मौखिक ही था। अतः लोगों द्वारा मौखिक कथायें ही सुनाई जाती थीं। जैसे–दादा–दादी, नाना–नानी प्रायः बच्चों को मौखिक रूप से ही तरह–तरह की उपदेशात्मक कहानियॉ सुनाते थे।

(अ) <u>कथा-उपदेश का माध्यम</u> :

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में प्रायः किसी न किसी रूप में कथा के बहाने मनुष्य के लिए सन्मार्ग निर्देश करने के हेतु ही उपदेश और शिक्षा का प्रणयन होता आया है। वैदिक काल से लेकर अब तक उपर्युक्त धार्मिक उपदेश एवं शिक्षा, विज्ञान के

प्रचार–प्रसार के लिये इस साहित्यिक विधा का क्रमशः उपवृंहण होता चला आया है और यह विधा सम्पूर्ण भूमण्डल पर इसी रूप में प्रायः सभी भाषाओं में अन्तर्निहित है। कथा–साहित्य रूप विधा अत्यन्त सहजता से मूढ हृदय को भी अपनी ओजस्विता से शीघ्र ही प्रभावित करती है। यह माध्यम वस्तुतः अनादिकाल से अक्षुण्ण है एवं अनन्तकाल तक इसकी अजस्र धारा बहती रहेगी। साहित्य के इतिहास में इस कला के संवर्द्धन में बौद्ध और जैनियों का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। उपदेश या नीति शिक्षा को चरितार्थ करने के बहाने जैनियों ने भी उपर्युक्त माध्यम का खूब सहारा लिया।

"पंञ्चतन्त्र", "हितोपदेश" आदि संस्कृत साहित्य के अत्यन्त प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रन्थो का दुनियाँ में सभी साक्षर व्यक्ति सम्मान करते हैं, जिसमें नीति, उपदेश, शिक्षा, विज्ञान आदि सम्पूर्ण तत्वों को प्रगट करने का मनोहर माध्यम कथायें ही हैं। सामान्य लौकिक कहानियाँ मात्र मनोरञ्जन की ही सामग्री नहीं है अपितु पशु–पक्षियों की कथाओ के रूप में विशेषतः शिक्षा के लिये ही प्रयुक्त होती रही हैं।

वस्तुतः यह विधा संस्कृत साहित्य की प्राणात्मिका शक्ति है। ऐसा कहने में हमें तनिक भी हिचक नहीं होना चाहिए। संस्कृत साहित्य की संदेश संवाहिका एवं उन सदेशो के बहुआयामी शिक्षण के विषयों से ओत–प्रोत कथा विधा के विषय में "एच०एल० हरिअप्पा" ने विचार व्यक्त करते हुये कहा है[1] कि सशक्त तथा वीर योद्धा होने के लिये विपत्ति में पड़े हुए को बचाने के लिए उदार तथा सहायक बनने, दान लेने और देने, सच्चे बनने तथा ईष्या से मुक्त होने या संक्षेपतः ईश्वर का आदर करने और मानव को प्रेम करने के प्रति उत्साह प्रदान करने के अतिरिक्त प्राचीन कथाओं से हम और क्या उपदेश चाहते हैं।"

---

1 एच0 एल0 हरिअप्पा, "ऋग्वैदिक लीजेण्ड थ्रू दी, एजेज" पृ0– 145

(ब) कथा-ज्ञान का माध्यम :

वस्तुत. कथाये सुनने के बाद मनुष्य का ज्ञानार्जन होता रहा होगा। जैसे–रामायण में राम–सीतादि की कथा सुनने के बाद सामान्य जन को उनका अनुकरण करने की सीख मिलती थी। "हितोपदेश" आदि की कथायें भी इसी श्रेणी में आती हैं।

(स) कथा मनोरञ्जन का माध्यम :

जबसे मानव का जन्म हुआ होगा, तबसे लेकर आज तक प्रायः लोग खाली समय व्यतीत करने के लिये कहानियों के माध्यम से अपना मनोरञ्जन करते आये हैं। ज्यादातर किसी बात को समझाने के लिये भी कहानियों का उदाहरण देकर ही लोग अपनी बात को मनोरञ्जन ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

(3) कथा के भेद :

वैदिक काल से लेकर सम्पूर्ण वाङ्मय मे प्राप्त कथाओं को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है– (i) अद्भुत कथा, Fairy Tales (ii) लोककथा Marchen, (iii) कल्पित कथा Myths, (iv) पशुकथा Fables। सूक्ष्म विवेचन के आधार पर सम्पूर्ण कथा–साहित्य को दो भागो मे बांटा जा सकता है –

(i) नीतिकथा--जिसके अन्तर्गत उपदेशात्मक पशु कथायें भी आ सकती हैं।

(ii) लोककथा– जिसके अंतर्गत समस्त प्रकार की अद्भुत, कल्पित एवं काल्पनिक आदि कथाओं को संगृहीत किया जा सकता है।

कथा का विभाजन भारतीय दृष्टि से "नीतिशास्त्र" और "अर्थशास्त्र" के रूप में भी किया जा सकता है। "अर्थशास्त्र" के अन्तर्गत राजनीतिक, दैनिक जनजीवन की झाँकी तथा जीवन के भौतिक मूल्यों का विवेचन रहता है। नीतिशास्त्रों तथा धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित जीवन के उदात्त दृष्टिकोणों के संकलन एवं उद्देश्य का वर्णन रहता है।

लोक–कथाओं में इतनी बहुरूपता है कि इनका अति सूक्ष्म विभाजन करना सम्भव नही है, किन्तु स्थूल रूप से इनका वर्गीकरण दो दृष्टिकोणों से किया जा सकता है– (1) प्रयोजन की दृष्टि से, (2) पात्रों की दृष्टि से।

प्रयोजन की दृष्टि से लोक–कथाओं को नीतिकथा, मनोरञ्जन प्रधान कथा और इतिवृत्तात्मक अथवा दन्तकथा तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

पात्रों की दृष्टि से कथाओं को तीन वर्गों में रखा जा सकता है।[1] जन्तु कथा, मानवीय कथा, अतिमानवीय कथा।

यद्यपि मनोरञ्जन का तत्व सभी कथाओ में अवश्य ही विद्यमान रहता है, किन्तु जिस कथा का उद्देश्य रोचक ढंग से नीति का उपदेश देना हो, वह नीति कथा तथा जो प्रमुखतः किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के विषय में कोई किंवदन्ती अथवा इतिवृत्त प्रस्तुत करती हो, वह इतिवृत्तात्मक अथवा दन्त कथा कही जायेगी, तथा जिन कथाओं का प्रयोजन मात्र मनोरञ्जन करना हो, वह मनोरञ्जन प्रधान कथायें कहीं जायेंगी।

जन्तु कथा के पात्र प्रमुख रूप से पशु–पक्षी ही होते हैं और प्रयोजन भी इनका बोधात्मक ही होता है। अतएव इनका अन्तर्भाव नीतिकथाओं में ही हो जाता है। मानव के समान गुणों और आचरणो का आवरण यदि पशु–पक्षियों को भी पहनाकर प्रस्तुत किया जाये तो उनसे जो विनोदपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है, उसके प्रभाव से जन्तु–कथा पाठक या श्रोता के मन में सहज ही घर कर जाती है और इसके माध्यम से दिया गया उपदेश भुलाने पर भी नहीं भूलता। साथ–ही–साथ जन्तु–कथाओं में पशु–पक्षियों के स्वभाव आदि का भी सूक्ष्म निरीक्षण देखते ही बनता है।

---

1 ए0बी0 कीथ , 'हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर' पृष्ठ– 243

मानवीय कथा का मुख्य पात्र मनुष्य ही होता है। ऐसी कथाओं के द्वारा भी लोक—व्यहार नीति या सदाचार का उपदेश दिया जाता है। अधिकतर इस प्रकार की कथाये इतिवृत्तात्मक ही होती हैं, जिनमें लोक प्रथित मानवों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की किवदन्तियॉ रोचक तथा कौतूहल जनक ढंग से ग्रंथित होती हैं।

अतिमानवीय कथाओ के पात्र प्रमुखतः भूत—पिशाच, बेताल, यक्ष—यक्षिणियाँ, अप्सरायें आदि होती हैं। ऐसी कथाये अधिकतर मनोरञ्जनात्मक ही होती हैं। आश्चर्यजनक घटनाओ के वर्णन के द्वारा ये कथायें, श्रोताओ या पाठकों के मन में कौतूहल उत्पन्न करने तथा सृष्टि के रहस्यात्मक पक्ष के प्रति उसकी कल्पना को उद्दीप्त करने मे पर्याप्त सफल होती हैं इसलिए इनमें ऐसी कथाओ का भी नितान्त अभाव नहीं है, जो मानव को उदात्त चरित्रों की ओर आकर्षित करती हैं।

(4) <u>कथा का स्वरूप काल्पनिक अथवा ऐतिहासिक</u> :

कथा के सन्दर्भ में यह तथ्य शीघ्रता से उठता है कि कथा में कल्पना की प्रधानता होती है तथा लेखक किसी ऐतिहासिक तथ्य को अपनी रचना का आधारशिला बनाता है। कथा का इतिवृत्त उत्पाद्य होता है और उत्पाद्य वस्तु कवि कल्पित होती है।[1] जबकि इतिहास का अर्थ इसके विपरीत होता है। इति—ऐसा, ह—निश्चित रूप से और आस—पास हुआ। इस प्रकार इतिहास सत्य घटनाओं को ही उपस्थित करता है। कथा का अर्विर्भाव आदिम मानव की उस अवस्था में प्रस्फुटित हुआ जब वह शिशु था। समस्त लोककथा—साहित्य एवं धर्म गाथाये प्रथमतः दिव्य प्रकृति व्यापारों के वर्णन का रूपक हैं और द्वितीयतः कृषि उत्पादन एवं प्रजनन सम्बन्धी भावाभिव्यक्ति करने का साधन। इन दोनों ही दृष्टिकोणों में गाथाओं के पात्रों का ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं है। परन्तु कथा में सदैव ऐतिहासिक तथ्यो का अभाव ही हो ऐसा आवश्यक नहीं है।

---

1 "उत्पाद्य कविकल्पितं" धनञ्जय, "दशरूपक" प्रथम प्रकाश, कारिका 15

इस सम्बन्ध मे भानु जी ने अपना मत व्यक्त किया है।[1] कोलाहलाचार्य श्री भानुजी के मत से सहमत हैं। इन सबका यही अर्थ है कि यद्यपि कथा कल्पना प्रसूत होती है फिर भी उसमे यत्किंचित् अंश सत्य का भी समाहित रहता है।[2]

"इस तरह आगे चलकर तीर की गति से निरन्तर कुछ दूर तक चलकर समाप्त हो जाने वाली सीधी–सादी कथा की अवतारणा के कारण व्यापकता तथा विस्तार ने आगे चलकर घनत्व का स्थान ले लिया और जटिलता की तुलना में सरलता का आदर बढ चला पर यह अनिवार्य नहीं कि कथा का स्वरूप सीधा–सादा ही हो।

(5) संस्कृत साहित्य में प्राप्त कथाओं के विविध रूप :

संस्कृत–साहित्य में कथा–विधा में प्रकृति के अनुसार अनेकरूपता मिलती है। प्राचीनतम् साहित्य में इसका कलेवर प्रायः पद्यात्मक ही मिलता है। संभवतः इसके पीछे तत्कालीन सूत् या कथाविद् प्रचलित गाथाओं का गायन किया करते हैं। यही रहस्य सभावित है जिनमें सगीतात्मकता था तथा जिनमे संगीत का पुट अवश्य ही पाया जाता था। नीति–कथाओं में प्रायः गद्यात्मक शैली का निवेश पाया जाता है। उपदेश या शिक्षा के लिए पद्य का प्रयोग ज्यादा होता आया है। इसके पीछे भी बड़ी वैज्ञानिकता है जो अलग चिन्तन का एक विषय है।

"वृहत्कथामञ्जरी"[3] अथवा "कथासरित्यसागर" जो अत्यन्त प्राचीन कथासाहित्य के उदाहरण स्वरूप पद्यात्मक ही हैं। प्रारम्भ में परिस्थितिवश एवं वर्णनीय विषय की आवश्यकता के अनुसार प्रायः कथायें लघु आकार की हुआ करती थीं जिनमें मुख्यतः कथा का तत्व एवं इतिवृत्त प्रमुख हुआ करता था। कालान्तर में वर्णनशैली के प्रभाव से इसमें बहुत बदलाव आया है। उपर्युक्त शैली के कारण कथाओं के आकार एवं तथ्यों पर भी सुविस्तृत प्रभाव पड़ा है ऐसी कहानियाँ प्रायः पराक्रम, समुद्रयात्रा अथवा विभिन्न

---

1 एकज्ञात सत्यार्थ भूतायाः कथायाः। प्रबन्धस्य कल्पना रचना स्तोक सत्या यथा कादम्बर्यादिः।। बी0राघवन, "भोजाज श्रृगार–प्रकाश', पृष्ठ 615 पर उद्धत।

2 "प्रबन्ध कल्पनायां प्राक् सत्यां सुज्ञा कथां विदुः।" – बी0 राघवन, "भोजाज श्रृंगार प्रकाश" पृष्ठ 615 पर उद्धत।

3 गुणादय

स्वभाव की यात्राओ, घटनाओं आदि पर निर्भर करती हैं। बहुत सारी कथाओं में कल्पना द्वारा अनेक प्रकार से उतार–चढ़ाव विस्तार एवं भौतिक घटनाओं से रहित जैसे–आकाशीय, पर्वतीय, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, राक्षस आदि प्राणियो से संबंधित इतिवृत्त पायी जाती हैं। इसमे धर्म–प्राण भारतीयों की धार्मिक भावना ही मूल कारण है।

अद्भूत–कथा, लोक–कथा, कल्पित–कथा, पशु एवं विभिन्न जीव–जन्तु कथाओं के आधार पर कथा–साहित्य का स्वरूप अनेक रूप धारण किये हुए साहित्य मे अपना प्रभाव डालता है। जिनके द्वारा नीति–शास्त्र, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र एवं जनजीवन की झॉकी लिए भौतिक मूल्यो का विवेचन होता है।

लोककथाओं में प्रयोजन एवं पात्रों की दृष्टि से नीतिकथा एवं दन्तकथा का अनेक प्रकार से विभाग किया जा सकता है। साधारणतः मनोरञ्जक तत्व कथाओं में सर्वत्र उपलब्ध होता है किन्तु उसका परम उद्देश्य नीति का उपदेश एवं शिक्षा ही मानी जा सकती है। जन्तुकथा में पात्र पशु–पक्षी हुआ करते हैं जिनके द्वारा किसी खास शिक्षा का बोध कराया जाता है। साथ ही साथ विभिन्न पशु–पक्षियों के स्वभाव आदि की जानकारी से अत्यन्त आनन्द का विषय बनता है। मानवीय कथाओं के द्वारा लोक–व्यवहार नीति, सदाचार का उपदेश लोक प्रसिद्धि मनुष्यों के सम्बन्ध में किवदन्तियों के द्वारा इतिवृत्त बडे ही रोचक ढंग से ग्रथित होता है।

अतिमानवीय कथाओं में यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, अप्सरायें, उत्तलिकायें, भूत, पिशाच, बेतालों, आदि के द्वारा आश्चर्यचकित कर देने वाली घटनाओं के वर्णन से सृष्टि के रहस्यात्मक पक्ष को अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ–साथ मानव के उदात्त–चरित्र को भी कहीं–कहीं पर उजागर किया जाता रहा है।

सस्कृत–साहित्य में कथा–साहित्य के बीज अपने विविध रूप धारण किये हुए वेद साहित्य से ही प्रारम्भ होते हैं। इसमें कोई आश्चर्य एवं जिज्ञासा का विशेष तात्पर्य नहीं है। ऋग्वेद में दार्शनिक सूक्तों का तत्वतः उपनिषदों के विवेचनों से सम्बद्ध है

एव अनेको सूक्त वाङ्मय मे प्रबन्ध काव्य एवं नाटकों से सम्बद्ध हैं। ऐसे आख्यान गद्य एवं पद्यात्मक हैं। इनके स्वरूप पर पाश्चात्य विद्वानो में अनेक मदभेद है। पद्यभाग में रोचकता होने से स्थिरता अधिक पायी जाती रही है, एवं गद्यभाग में मात्र कथात्मकता होने के कारण अस्थिरता। ऋग्वेदीय संवाद सूक्तो को गद्यात्मक एवं पद्यात्मक होने के कारण (चम्पू शैली) को पाश्चात्य विद्वान "ओल्डेन वर्ग" ने आख्यान नाम दिया है। संगीत का सहारा लेकर (गीत, नृत्य, वाद्य) प्रबंध एवं नाटक कालान्तर में प्रार्दुभूत हुए। इस प्रकार वैदिक साहित्य मे संवाद सूक्तों में कथा का स्वरूप सर्वत्र अर्न्तनिहित है। जो समय–समय पर युग–युगान्तर में परिस्थिति विशेष के परिवर्तन एवं नवीन कल्पनाओ के आधार पर बदलती हुई परिवृद्धित होकर के साहित्य में आकर्षण के केन्द्र है।

ऋग्वेद के अनेकों आख्यान उपवृह्मण के आधार पर ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद ग्रन्थ, सूत्रग्रन्थ एवं रामायण, महाभारत तथा पुराणों मे परिवर्तित होकर विश्व–साहित्य में अपना एक अक्षुण्ण स्थान बनाए हुए हैं। वेदों में सम्प्राप्त प्रमुख आख्यान जैसे–शुनःशेप 1/24, अगस्त्य और लोपा मुद्रा 1/179, गृत्समद 2/92, वशिष्ठ और विश्वामित्र 3/53 तथा 7/33, सोम का अवतरण 3/43, त्रयरूप और वृश जान 5/2, अग्नि का जन्म 5/11, श्यावश्व 5/32, वृहस्पति का जन्म 6/71, राजा सुदास 7/18, नहुष 7/95, उर्वशी और पुरूरवा 10/95, सरमापाणि 10/108, देवापि और शान्तनु 10/98, नचिकेता 10/135, च्यवन और सुकन्या 1/116, 117, सोभरि–काण्व 8/19, दध्यंग–आथर्णव 1/116, 12 तथा यम–यमी 10/10 आदि।

उपर्युक्त कथाओं के संरचना की कला अत्यन्त सरल तो अवश्य है किन्तु पूर्ण विकसित नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है। इसके साथ–साथ हमें यह भी कहने मे हिचक नही है कि उनमें अतिमानवीय एवं चमत्कारी पात्रों का अभाव सा मालूम पड़ता

है, किन्तु कथावस्तु का विस्तार एवं चरित्र का पूर्णतया निदर्शन प्राप्त होता है। कमानुसार ब्राह्मण साहित्य में (जो संहिताओं की व्याख्या करते हैं) यज्ञीय विधि–विधानों के साधनाभूत कथाओं का ही आश्रय लेते हैं जैसे–शुनः शेप की कथा, ऐतरेय ब्राह्मण में मनु–आख्यान के रूप में विस्तार लेता है। गौतम राहु–गण की आख्यायिका, उद्दालक और आरूणि की कथा का स्वरूप बनाता है आदि।

इस प्रकार कमश· वैदिक कथाओं की अपेक्षा ब्राह्मण की कथाओं में काफी विकास का अनुभव होता है। ये सब कथा–शिल्प के गौरव हैं। तदनन्तर–उपनिषदों अर्थात् अध्यात्म विधा के आगार वेदान्तों में लोकसंदर्भित कथाओं का प्रायः अभाव दिखायी पड़ता है। ब्रह्म–ज्ञान, आत्म ज्ञान, यज्ञीय विधि आदि का चिन्तन एवं व्यवस्था कथा में प्राप्त होता है। वेदों में प्रयुक्त उमा–हैमवती का मुग्धकारी आख्यान, केनोपनिषद मे नचिकेता, कठोपनिषद में सत्यकाम, जाबालि तथा उनकी माता की कथा, इन्द्र विरोचन की कथा, प्राण की श्रेष्ठता विषयक अनेक आख्यान विभिन्न उपनिषदों में गुरू–शिष्य की परम्परा के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान के रूप में परिवृंहित होते हुए अन्त मे ब्रह्म–ज्ञान में केन्द्रित हो जाते हैं।

कथाशिल्प क्रमानुसार रामायण मे (पूर्व–वर्णित मंजूषा–शैली) के रूप में अपने पूर्ण विकास को सम्प्राप्त राम की आधिकारिक कथा के साथ बहुशः प्रासङ्गिक एवं अप्रासङ्गिक कथाओं का आगार है। रामायण में आध्यात्मिक एवं लौकिक आदि सभी कथा प्रकारों का संतुलन के साथ पूर्ण विकास दिखायी देता है। पात्र एंव संवाद योजना अद्‌भुत बन पडा है। शिक्षा का माध्यम सूक्तियों का उद्रेक बडा ही मनोरम है। पात्रों द्वारा हर प्रकार के क्षेत्रों का जैसे–राज–परिवार, ऋषि–मुनि, कोल–भील, वानर–राक्षस, पुण्यात्मा–पापी आदि का प्रतिनिधित्व कराया गया है। उदाहरणस्वरूप अयोध्याकाण्ड मे श्रवण कुमार की कथा, अरण्य काण्ड में पंचाप्सर तीर्थ एवं माण्डकर्णि मुनि की कथा, शूर्पणखा, खर–दूषण वध, जटायु, शबरी आदि। किष्किन्धा काण्ड में

राम—सुग्रीव मैत्री, बालि—वध, सम्पाति, हनुमान उत्पत्ति आदि कथायें। उत्तरकाण्ड में विश्रवा, कुबेर एवं राक्षस वंश का वर्णन, रावण के जन्म के विषय में अनेक प्रकार की कथाये, हनुमान जी के उत्पत्ति एवं जीवन से सम्बन्धित अनेक चमत्कारी घटनायें, कुत्ते एव ब्राह्मण की कथा, निमि और वशिष्ठ, ययाति और उनके पुत्र पुरू, मान्धाता—वध, इन्द्र—वृत्रासुर आदि कथाओ का पूर्ण—विस्तार के साथ सुविकसित वर्णन कथा साहित्य का पूर्ण रूप किसको नहीं, लुब्ध एवं द्रवित करता है। सुन्दरकाण्ड एवं युद्ध काण्ड में प्रायः आधिकारिक कथा राम की ही सम्प्राप्त होती है।

कथा सौन्दर्य की अनुपम कृति महाभारत जैसा ग्रन्थ विश्व के किसी भी साहित्य में अलभ्य है। कथा शिल्प के तीनों क्या और भी चाहे जितनी शिल्प की परिकल्पना की जाये महाभारत सबका आकर है। इसमें भी रामायण की भॉति आधिकारिक कथा के साथ—साथ प्रचुर मात्रा में अवान्तर कथाओं का योगदान है। जो आधिकारिक कथा में चार चॉद लगाती हैं। महाभारत के पश्चात कथा साहित्य की सरचनाओं मे महाभारत की नीतियों का प्रयोग इतस्ततः सर्वत्र दिखायी पड़ता है। इसके लिए एक कहावत चरितार्थ है कि पृथिवी पर सुन्दरतम कथाओं का महाभारत के उपाख्यानों मे पूर्णतया समावेश है। पशु कथा महाभारत में पूर्ण विकसित हुई है। महाभारत की अवान्तर कथाओ मे पर्वो के अनुसार आदिपर्व— में गजकच्छप, समुद्रमन्थन, दुष्यन्त—शकुन्तला आख्यान, माण्डव्य ऋषि, एकलव्य, सुन्द—उपसुन्द आदि। सभापर्व में—जरासन्ध, शिशुपाल आदि। वनपर्व में नल—दमयन्ती, अगस्त्य—लोपामुद्रा, परशुराम, सुकन्या, च्यवन महर्षि, गंगावतरण, मान्धाता, उशीनर, अष्टावक्र, शिवि, मुद्गल, सावित्री चरित्र, कर्णजन्म आदि। उद्योग पर्व में विदुला रन्तिदेव, भरत, पृथु आदि। शल्य पर्व में—त्रिपुरों की उत्पत्ति एवं विनाश की कथा, हंस—कौआ आख्यान, देवल मुनि आदि। शान्ति पर्व में—स्वयंभू मनु, परशुराम, पृथु, केकयराज, व्याघ्र, सियार, इन्द्र—प्रह्लाद, मत्स्यत्रयी, विडाल, चूहा, ब्रह्मदत्त, पूजनी चिडिया,

बहेलिया, कपोत–कपोती आख्यान, जन्मेजय प्रसङ्ग, ब्राह्मण बालक की कहानी, सेमल वृक्ष, वायु आख्यान, गौतम, वृत्रासुर आदि आख्यान। अनुशासन पर्व में–सुदर्शन आख्यान, विश्वामित्र जन्म, गीदड और वानर, शूद्र और मुनि, राजा कुशिक, च्यवन मुनि, राजा नृग की कथा, सप्त–ऋषियो के यज्ञ आदि आख्यान महाभारत जैसे–कथा–साहित्य के शिल्प मे नग हैं।

इसी प्रकार कमानुसार उपर्युक्त कथा साहित्य अपनी अबाध गति की अजस्र धारा बहाता हुआ वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, रामायण, महाभारत की सम्पूर्ण कथा, परम्पराओं को पूर्ण विकसित करते हुए पुराणों में भी अपना अक्षुण्ण स्थान बनाये हुए है। महाभारत की तरह पुराणों की भी विशालता का ओर–छोर नहीं हैं। पुराणों में भी मानव जीवन के हर क्षेत्र के सम्पूर्ण पहलुओं को पुराणों के कथा–साहित्य द्वारा पूर्णतया संस्पर्श एवं संस्कार किया गया है। (आधुनिक भारतीय समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है जिसका मेरूदण्ड पुराण ही है।)[1]

शब्दकोषो के अनुसार प्राचीन कथाओ एवं आख्यायिकाओं का संग्रह पुराणों का अपर नाम है, जिनमे पवित्रतम् धरोहर के रूप में हमारा कथा–साहित्य सुरक्षित है। धार्मिक दृष्टिकोण से रचा गया यह पूर्ण कथा–साहित्य लौकिक व्यवहारों के समस्त अङ्गों का भी पूर्णतया प्रणयन करता है। पुराणों में आख्यान शैली का प्राबल्य है। मानव–जीवन के अभिन्न अङ्ग, दया, परोपकार, मैत्री, करूणा, आस्तेय, अपरिग्रह, सत्याचरण, ब्रह्मचर्य, साहस, सरलता, निरभिमानिता, त्याग, संयम, व्रत, उपवास, जप–तप, दान, तीर्थाटन आदि के नियमन के प्रसङ्ग पुराणों में सर्वत्र बड़े ही रोचक हैं। पुराणों के अनगिनत उपदेश जो सहस्त्रों वर्षो से मानव कल्याण हेतु प्रयुक्त होते आये, उनकी आज भी उतनी ही महत्ता है।

---

1 संस्कृत साहित्य का इतिहास–बलदेव उपाध्याय।

इतिहास एवं कल्पना के आधार पर ये कथाये पुराणों में आकर वंशानुचरित से सम्बद्ध हुई हैं। विषय वैविध्य की दृष्टि से थोड़े में उपर्युक्त मानक इस प्रकार है–विष्णु परुाण, यदुवंश विनाश का आख्यान, अष्टावक्र, राजावेन हिरण्यकशिपु, भरत आख्यान, सौभरि उपाख्यान, इन्द्र, दुर्वासा, निभि, वशिष्ठ, ययाति, शान्तनु आदि आख्यान।

भागवत पुराण मे–अवधूतोपाख्यान, कपोत–कपोती दृष्टान्त, तितिक्षु ब्राह्मण, भिक्षुक दृष्टान्त, कपिलदेव दृति संवाद, ऋषभोपदेश, हंसोपदेश एवं जड–भरत आदि वृत्तान्त। गरूण पुराण मे–प्रेत सम्बन्धित हजारों उपाख्यान प्राप्त होते हैं। शिव पुराण मे–दुर्वासा उत्पत्ति। मार्कण्डेय पुराण में–मदालसा उपाख्यान, पतिव्रता स्त्री एवं मान्डव्य ऋषि, सुरथ आख्यान, राजा हरिश्चन्द्र की कथा आदि।

मत्स्य पुराण में–सावित्री आख्यान, कामुकी नारी की कथा, पुरूरवा–उर्वशी, नहुष, रति और ययाति, शर्मिष्ठा, देवयानी, कार्त्तवीर्य–अर्जुन, विदर्भ, अन्धक वंश की कथा, देवापि, शान्तनु, पाण्डु–धृतराष्ट्र, कौरव–पाण्डव, जन्मेजय, लीलावती वेश्या, राजा पुष्पवाहन, त्रिपुर की कथा, हरिकेश यक्ष की कथा आदि। वामन पुराण में–कूर्मावतार प्रसङ्ग, प्रहलाद, अन्धक एवं कलियुग वृतान्त लिङ्ग पुराण में–श्वेत मुनि का जन्म, दधीचि आख्यान, त्रिपुरासर वध, जलन्धर वध आदि। स्कन्ध पुराण में–दक्ष यज्ञ, शिव–लिङ्गार्चन, समुद्रमन्थन, पार्वती आख्यान, पशुपति आख्यान, चण्डिका, कुमार महात्म्य, नारद समागम, महिषासुर आख्यान, त्रिशंकु, विश्वामित्र मोह एवं एकादश रूद्रों का महात्म्य आदि।

भविष्य पुराण में–कृष्ण–पुत्र शाम्ब की कथा।

ब्रह्माण्ड पुराण में–रामायण की कथा, पार्वती आख्यान, शिव–पार्वती विवाह, दक्ष–यज्ञ विध्वंस, कृष्ण, शिव एवं राम की कथायें समुपलब्ध हैं।

पद्म पुराण मे—समुद्र—मन्थन, पृथु उत्पत्ति, वृत्तासुर संग्राम, वामनावतार, मार्कण्डेय, कार्तिकेय की उत्पत्ति, तारकासुर वध, सूर्य एवं चन्द्रवश वर्णन, गायित्री और सावित्री आख्यान, सुव्रत, पृथु, वैण, उग्रसेन, सुकर्मा, नहुष, ययाति, च्यवन एवं शकुन्तलोपाख्यान, ध्रुव—चरित्र, शिवि, उशीनरचरित्र, रावण—जन्म, कपिल—ब्राह्मण वृत्तान्त आदि वर्णित हैं।

अग्निपुराण मे—साहित्य के समस्त विषयों के साथ धार्मिक कथाओं का प्रसङ्ग प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण मे—गङ्गा, लक्ष्मी, सरस्वती एवं पृथिवी की कथा, तुलसी, स्वाहा—स्वधा, सावित्री चरित्र, दुर्गा और तारा आख्यान, राधिका आविर्भाव की कथा, गणपति जन्म एवं कर्म और चरित्र का वर्णन, अत्यन्त मुग्धकारी कथायें वर्णित हैं।

कालान्तर में उपर्युक्त शास्त्रों की काव्यधारा में, जैन, बौद्ध कथाओं की धारा का भी सम्मिलन मिलता है। इसीलिए भारतीय कथा—साहित्य की (वैदिक काव्य धारा, जैन काव्य धारा, बौद्ध काव्य धारा) में तीन प्रकार प्रसिद्ध हैं। जैन, बौद्ध कथायें संस्कृत पालि एवं प्राकृत भाषाओ के माध्यम से विश्व कथा—साहित्य में अपना अक्षुण्ण स्थान बनाये हुए है। कथाओं की सर्वोत्कृष्ट कलात्मकता वैदिक कथा धारा में ही निहित है जिसे कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वान दुराग्रहवश ब्राह्मणवादी मानते हैं।

लोक में प्रचलित कथाओं को बौद्ध एवं जैनियों ने अपने ढंग से संवारा। बुद्ध के उदात्त चरित्र को प्रस्तुत करते हुये जन्तु कथाओं के द्वारा आदर्श रूप में प्रस्तुत करते हुये लोक में बौद्धों ने भ्रमित लोगों को सन्मार्ग दिया। इनके प्राचीनतम संग्रह अवदानशतक प्रसिद्ध हैं संस्कृत जातकमाला (आर्यशूर—कृत) पालि में रचित बौद्ध कथाओं का निदर्शक है।

नीति एव धर्म के ही परिप्रेक्ष्य मे उपदेश देने वाली कथाओं का उपयोग जैन मुनियों ने भी किया। (नानाधम्मकहायो) तथा (उत्तराज्झयण सुत्त) आदि आगम ग्रन्थों मे लोकानुरञ्जन के बहाने वैराग्य का उपदेश दिया गया है। इसी प्रकार अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री, प्राकृत मे जैनियो का कथा-साहित्य भण्डार है। संस्कृत में भी जैन मुनियों का कथा-साहित्य के सेवा में बहुत अच्छा कार्य है। इस परिप्रेक्ष्य में "हरिषेणाचार्य" द्वारा रचित "वृहत्कथाकोष" दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसी परम्परा में जैन मुनियों के अनेक अवदान हैं। यथा-श्रीचन्द्र का "कथा-कोश", नेमिदत्त का "कथा कोश", जिनेश्वर "कथाकोश प्रकरण", जयसिंह सूरी "धर्मोपदेशमाला" (प्राकृत), हेमचन्द्र "परिशिष्ट पर्वन" आदि प्रमुख ग्रन्थ है।

इस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है। इस कहावत को पूर्णतया चरितार्थ करती हुई कथा-शिल्प की धारा विपुल संस्कृत-साहित्य का सर्वस्व कही जा सकती है। थोड़े में उपर्युक्त ढंग से सम्प्राप्त कथाओं के विविध स्वरूप का विवेचन स्पष्ट करते हुये मुझे यह कहने मे कि साहित्य में कथा प्राणात्मिका होती है, तनिक भी हिचक नही है। विवेचन के अनुसार यह भी अनुभूति होती है कि आधुनिक साहित्य एवं कालान्तर में भी कालचक्र के अनुसार कथा-साहित्य किसी न किसी रूप में प्रवाहित होता ही रहेगा।

(6) कथा का विकास :

संस्कृत के कथा-साहित्य का विकास वैदिक, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि कई स्थितियों एवं युगों से होकर गुजरता है। इन सभी युगों में कथा-साहित्य का अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण या एक ही जैसा शिल्प-सौन्दर्य एवं मान्यतायें नहीं रही हैं। वैदिक संहिताओं में कथाओं की जगह कथा के तत्व प्रचुर रूप में फैले हुए हैं। मन्त्र-संहिताओं के संवाद सूक्तों में भारतीय साहित्य के विभिन्न पहलुओं को रूप-रंग और वाणी देने वाले संजीवन तत्व मिलते हैं। मंत्र-संहिताओं की

अपेक्षा ब्राह्मण ग्रन्थो और आरण्यको में कथा, आख्यान एवं आख्यायिका का एक स्वस्थ दृष्टिकोण पनपता हुआ दिखाई देता है।

वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग उपनिषद ग्रन्थों में कथा–साहित्य की मूल सम्पदा छिपी हुई प्रतीत होती है। फिर भी उपनिषदों के इस कथावतरण का मूल उद्देश्य साहित्य की अभिवृद्धि न होकर उससे सर्वथा भिन्न अध्यात्म चिन्तन है। इन कथाओ में भारतीय कथा–साहित्य का संवर्धन करने योग्य विशेषतायें भले ही विद्यमान न हों, किन्तु तत्कालीन जीवन के मुख्य आधार, ऋषि, मुनि, ब्रह्मचारी, पुरोहित और राजा आदि को पात्रो के रूप मे देखकर उन कथाओं की पवित्रता पर बड़ी आस्था होने लगती है। परमात्मा, पुनर्जन्म, मोक्ष–ज्ञान, यश, मृत्यु आदि विषयों पर आधारित उपनिषद् ग्रन्थों की ये कहानियॉ मनोरञ्जन की दृष्टि से भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

'रामायण' और 'महाभारत' की अवतारणा से ज्ञान के क्षेत्र में दो विभिन्न युगों का सूत्रपात हुआ, पौराणिक युग और महाकाव्यों का युग। 'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय साहित्य के दो वृहद् विश्वकोश हैं। 'रामायण' की अपेक्षा 'महाभारत में ऐसे प्रचुर तत्व विद्यमान हैं। बाल्मीकि और व्यास से भी बहुत पहले राम–रावण और कौरव–पांडवों की कथायें बिखरी हुई थीं। इन कथाओं ने तत्कालीन नट–नर्तक, सूत और कुशीलवों द्वारा सारे समाज में प्रचलित उक्त कथाओं का संशोधन करके रामकथा और पाण्डव–कथा का एक साहित्यिक भव्य रूप उपस्थित किया। 'महाभारत' की सैकडों कथायें, आख्यायिकायें और आख्यान इस बात की पुष्टि करते हैं कि उस समय तक कथा–साहित्य का अपना एक विशिष्ट स्थान बन चुका था।

पौराणिक युग ने कथा–साहित्य को अधिक लोकव्यापी बनाया। पुराणों की कथाओं का अस्तित्व बहुत समय तक समाज में मौखिक रूप से बना रहा और इसीलिए एक ओर तो उनमें प्रक्षेप जुडे और दूसरी ओर उनके स्वत्व पर स्वतंत्र दन्त

कथाओं का निर्माण हुआ। इन पौराणिक लोक प्रचलित कथाओं का प्रभाव उस प्रकाश मे बौद्ध जातकों पर स्पष्ट रूप से पड़ा। भगवान तथागत से सम्बद्ध लगभग "पांच सौ कथाये" इन जातको मे संकलित है। ये जातक कथायें व्यापक और मानवीय समक्ष के बहुत समीप हैं। इनमें यथार्थ कल्पना और व्याख्या के तत्वों का एक सत्य तादात्म्य होने के कारण कथा के क्षेत्र मे इन जातक कथाओं को प्रथम कलात्मक देन कहा जा सकता है। इन कथाओ में समाज की विभिन्न श्रेणियों के लोग, मनुष्य और पशु–पक्षी, नदी, पर्वत, पेड–पौधे की कहानियॉ बडी ही रोचक हैं।

इन कथाओं की ऐसी सवाभिभूत भावना का एक मात्र कारण उनके सुन्दर कथाशिल्प एवं उनको मनोवैज्ञानिक ढंग से सजाने की निपुणता में है। ये कथा कहानियॉ कुछ तो तत्कालीन जीवन के पराकमों पर आधारित हैं, कुछ समुद्री यात्राओं से सम्बद्ध, कुछ आश्चर्यपूर्ण घटनाओं से युक्त, कुछ आकाश लोक एवं गन्धर्व लोक का चित्रण करने वाली, कुछ धर्म प्रेरणा से पूरित, कुछ नीतिपूरक और अधिकांश शिक्षात्मक तथा उपदेशात्मक ही हैं।

(7) कथा का महत्व :

भारतीय संस्कृति में संस्कृत साहित्य का योगदान पूरे भू–मण्डल पर छिपा नहीं है। उसका मूलभूत कथा–शिल्प भारतीय शिल्पकारों द्वारा अत्यन्त बारीकी एवं मनौवैज्ञानिक रीति से प्रस्तुत किए जाने के कारण संसार में कथा रसिकों के सम्प्रदाय में अत्यन्त सम्मानित एवं सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता हुआ प्रशंसित होता चला आया है। वैदिक काल से लेकर आज तक संस्कृत कथा साहित्य एक लम्बे अरसे से विभिन्न युगों में विभिन्न परिस्थितियों के अनुकूल क्रमशः विकसित होता चला आ रहा है एव देश–विदेशों में भारतीय कथायें अनुवाद के रूप में भी सर्वत्र प्रसारित हुई हैं।

कथा साहित्य के अंकुरण से लेकर फल तक का विकास सुस्पष्ट है। संहिताओं में प्रक्षिप्त होकर धीरे–धीरे कालान्तर मे वही कथा के तत्व बीज रूप में ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यको के आख्यानों में पूर्णतया अंकुरित होकर रामायण, महाभारत, पुराणों के आख्यानो मे पल्लवित, वृहतकथा, जातक, पञ्चतन्त्र में आकर विकास के क्रम में पुष्पित होते हुए बेताल–पचविशतिका, दशकुमार–चरित एवं हितोपदेश आदि कथा सग्रह के रूप में समाज के सच्चे मायने में पथ प्रदर्शक हैं।

कथा साहित्य प्राचीन काल से लेकर अब तक की अपनी पूरी यात्रा में सस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि अनेकशः भाषाओं का सहारा लेकर युगों से प्रवाह्मान होता हुआ एक ही जैसा दृष्टिकोण या शिल्प सौन्दर्य तथा मान्यतायें नहीं रखा, बल्कि विकास के क्रम मे उच्चाउच्च मार्गो को लाँधते हुए भी भारतीय चिन्तन का निर्देशन एवं शिक्षा बदलते हुए भी परिस्थितियों एवं शिल्प में करता आ रहा है। अपनी संजीवनी शक्ति से भूमण्डल पर विभिन्न रूप से अविकसित कथा शिल्प में पूर्ण योगदान करता चला आ रहा है।

कथा साहित्य सबसे अधिक संबलित एवं विपुल संपदा से ओत प्रोत वैदिक काल के उपनिषद् ग्रंथो में विद्यमान है। उन्ही से अनुप्राणित होकर रामायण, महाभारत कालीन कथा–साहित्य सुविकसित होकर विश्व में अपना कोई शानी नहीं रखता। थोडे में हमने पीछे भी कथा साहित्य के विकास पर छिट–पुट विमर्श किया है। अब यहॉ भी इसके विकास पर अधिक न कहकर केवल आध्यात्मिक चेतना से भरपूर मनोरञ्जन की दृष्टि से भी पूर्ण उपयोगी भारतीय कथा कहानियाँ नीतिपरक एवं अधिकांशतः शिक्षाप्रद एवं उपदेशात्मक ही हैं, चाहे वह किसी रूप में बदलती–बिगड़ती कालकम में ढलती रही हैं।

(8) भारतीय कथा-साहित्य की विशेषतायें :

कथा साहित्य की निम्नतः विशेषताये हैं :–

1 कथानको मे नाटकों और काव्यों की भांति पौराणिक या ऐतिहासिक, पात्रों का प्रयोग नहीं होता है बल्कि शुद्ध काल्पनिक जगत का चित्रण मिलता है। यह कथन प्रारम्भिक कथाओं मे तो सत्य प्रतीत होता है, कालान्तर में कुछ ऐतिहासिक कथायें भी लिखी गई।

2. जीव–जन्तु और पशु–पक्षी भी मानव की बोली–बोलते हैं, अभिनय करते हैं, रोचक ढंग से मानवों को उपदेश देते हैं, उनके साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं एवं उनकी सहायता करते हैं तथा स्वयं भी उनसे सहायता की अपेक्षा रखते हैं।

3. निवेदन की मंजूषा विधि का प्रयोग ब्राह्मण–काल से विस्तार को प्राप्त कर पुराण काल तक पूर्ण परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है।

4 कथा साहित्य का एक विशेष प्रकार नीति कथायें भी हैं। "कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते" अर्थात ये बालोपयोगी हैं और कथाओं के माध्यम से इनमें नीति के रहस्यो की शिक्षा दी जाती है।

5. इसमें मानव पात्र न होकर जीव–जन्तु या पशु–पक्षी पात्र होते हैं।

6. ये मुख्यतया नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र से सम्बद्ध हैं।

7 इनमें जीवन का व्यवहारिक पक्ष वर्णित होता है। दैनिक जीवन, दैनिक व्यवहार, व्यक्ति और समाज का सम्पर्क कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश आदि वर्णित होता है।

8 इनमें नीति एवं धर्म की शिक्षा दी जाती है, अतः धर्मशास्त्र से भी इनका सम्बन्ध है।

9. इनमे जीवन का लक्ष्य आदर्शवादिता न बताकर लोक–व्यवहारज्ञता एवं नीति निपुणता बताया गया है।

10. इनमें जीवन के भले और बुरे दोनों पक्षों का वर्णन है। जैसै–जीवन की पवित्रता, कर्तव्य पालन, मित्र की रक्षा, वचन–पालन आदि गुणों के वर्णन के साथ ही ब्राह्मणों का छल–प्रपत्र्च और दम्भ, अन्तःपुर के कपट–व्यवहार, स्त्रियों की दुश्चरित्रता आदि दोषो का भी वर्णन है।

11 नीति कथाओं के पात्र पशु–पक्षी आदि मनुष्यों के तुल्य मित्रता, प्रेम, विवाद, लोभ, छल, सन्धि, विश्वासघात, विग्रह आदि करते हैं। उनके राजा, मन्त्री, दूत आदि सभी कुछ हैं। वे अवसरोचित सभी कार्य करते हैं। ये मानवीय गुणों और स्वभाव से युक्त होते हैं।

12. इनमे प्रमुखता के लिए आदेश या नीति का अंश पद्यों में दिया गया है और कथा गद्य मे दी गई है। एक भाव वाले विभिन्न श्लोक अनेक नीति ग्रन्थों से संग्रह करके वक्तव्य की पुष्टि के लिए दिए गये हैं। स्थान–स्थान पर प्रसङ्गानुसार सुभाषित भी नीतिग्रन्थों आदि से दिए गये हैं।

13. इनका प्रतिपाद्य विषय सदाचार, राजनीति और व्यवहार ज्ञान है।

14. इनमें जीवन की सफलता के लिए आवश्यक सभी गुणों का वर्णन है। जिन बातों को न जानने से मनुष्य जीवन में असफल हो जाता है, उनकी चेतावनी भी कथाओं द्वारा दी जाती है।

15. ये नीति–कथायें, पशु–पक्षियों आदि से सम्बद्ध हैं, अतः मानव मात्र के लिए रोचक और उपादेय हैं।

16 इनमे एक मुख्य कथा के अन्तर्गत अनेक उपकथाओं का समावेश होता है।

17. इनकी शैली सरल और सुबोध है। इनमें पाण्डित्य प्रदर्शन का सर्वथा अभाव रहता है। कथा में प्रवाह और रोचकता है।

18. इनमें कथा, नीति, सदाचार, व्यवहार ज्ञान, धर्म, दर्शन, उपदेश और काव्य–सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय रहता है।

19. नीति कथायें गद्य मे और उनसे प्राप्त होने वाली शिक्षा पद्य में वर्णित है। इनका उद्देश्य रोचक कथाओं द्वारा त्रिवर्ग की बातों का मार्मिक उपदेश देना है। इनमे चुभते हुए मुहावरे, अनूठी लोकोक्तियाँ तथा रोचक दृष्टान्तों का सर्वत्र प्राधान्य है।

20 कादम्बरी के अतिरिक्त समस्त सस्कृत–साहित्य प्रसादगुण वाली भाषा में लिखा गया है।

21. जहाँ भी कथा के मध्य छन्द आये हैं, आर्या, अनुष्टुप आदि लघु छन्द ही प्रमुख हैं, किन्तु कालान्तर में रचित कथाओं के मध्य विशालकाय चतुःचरण वाले छन्द भी प्राप्त होते हैं।

22. सामासिक शैली के प्रधान ग्रन्थों "दशकुमारचरित", "वासवदत्ता" एवं कादम्बरी के अतिरिक्त वर्णन विस्तार न्यून रूप से प्राप्त होता है।

23. नीति कथायें जहाँ उपदेश प्रधान होती हैं, वहीं लोक कथायें कल्पना प्रधान। यदि नीति कथायें पशु–पक्षियों से सम्बन्ध रखती हैं तो लोककथायें मानव जीवन से अनुस्यूत ही नहीं अनुप्राणित भी हैं।

इस प्रकार भारतीय कथायें सामान्य रूप में भारतीय–संस्कृति के अनुसार चलने तथा लोक व्यवहार में निपुण होने का आदेश देती हैं। इनकी शैली सरल एवं रोचक हैं तथा इनमें पांडित्य–प्रदर्शन का सर्वथा अभाव हैं, कथा में प्रवाह और रोचकता सदैव बनी रहती है। "शुकसप्तति" भी इसी प्रकार की रचना है।

(9) संस्कृत साहित्य में रचित कथा ग्रंथ :

संस्कृत–साहित्य के अन्तर्गत अनेक कथा ग्रन्थों की रचना हुई, जिनमें प्रथम शुद्ध कथाग्रन्थ विष्णुशर्मा कृत "पञ्चतन्त्र" को माना जा सकता है। " पञ्चतन्त्र" में कल्पित कथाओं का बाहुल्य है तथा साहित्यिक एवं कलात्मक तत्वों का पर्याप्त अभाव है। तथापि " पञ्चतन्त्र" कल्पित–कथाओं का वृहत् संकलन है। तत्पश्चात वह गुणाढ्य कृत "वृहत्कथा" तथा उसके तीन सस्करण के रूप में नेपाल के बुद्धस्वामी कृत "वृहत्कथा संग्रह" (8 वी शताब्दी) क्षेमेन्द्र की "वृहत्कथा मंजरी" तथा सोमदेव भट्ट कृत "कथा सरित्सागर" (1063 से 1081 ई०) का स्थान आता है। इसके पश्चात् कथा–ग्रथो की दीर्घ परम्परा प्राप्त होती है, जिसमें जम्भलदत्त, शिवदास, वल्लभदास तथा सोमदेव के सस्करणो में प्राप्त वेताल कथा–चक, सिंहासनद्वात्रिंशका अथवा द्वात्रिशत्पुत्तालिका अथवा विकम–चरित (1018–63 ई०) शुकसप्तति (लगभग 12 वी शताब्दी), मैथिल कवि विद्यापति कृत "पुरूषपरीक्षा" (15 वी शताब्दी), शिवदास कृत "कथार्णव" (15 वीं शताब्दी) बल्लाल सेन का "भोजप्रबन्ध" (16 वीं शताब्दी) जगन्नाथ मिश्र का "काव्यप्रकाश" (16 वीं शताब्दी) नारायण बालकृत "ईसब्नीति कथा" में ईसप् की कहानियो का "Aesop's Febles" अनुवाद है।

विक्रम चरित सम्बद्ध अनेक कथा–ग्रंथों की रचना की गई है, जैसे–अनन्त रचित "वीर चरित", शिवदास कृत "शालिवाहन कथा", अज्ञात लेखक कृत "विक्रमोदय", मेरूतुंग कृत "प्रबन्ध चिन्तामणि", राजशेखर कृत "प्रबन्ध कोश", हेमचन्द्र कृत "त्रिषष्टिश्लाका पुरूष चरित", सिद्धर्षि कृत "उपमति–भाव प्रपञ्च कथा", जगन्नाथ मिश्र रचित "कथा–प्रकाश", "कथा–कोष, प्रभाचन्द्र कृत "प्रभावान चरित", समय सुन्दर कृत "कालिकाचार्य कथा," सोमचन्द्र रचित "कथा महोदाधि", कवि कुंजर कृत "राजशेखर चरित", अज्ञात लेखक कृत "मुक्त चरित", नारायण शास्त्री रचित "कथा लतामञ्जरी," कृष्णराव कृत "कथा पंचक" पाण्डुरंग कृत "विजयपुर कथा" रामास्वामी शास्त्री कृत "कथावली" रामास्वामी शास्त्री कृत "कथावली" तथा "कथाकुसुममञ्जरी आदि।

संस्कृत की लघु कथाओ के विकास का युग 19 वीं शताब्दी का अन्तिम दशक व 20 वीं शती का प्रारम्भिक काल कहा जा सकता है। सहस्त्राधिक लघु कथायें 1898 ई० से 1910 ई० के मध्य लिखी गई हैं जिनका स्वतन्त्र संग्रहों के रूप में प्रकाशन हुआ है। संस्कृत की लघु कथाओं से सम्बन्धित नौ संग्रह भी इसी समय में निकले हैं तथा दो संग्रह 1898 ई० मे प्रकाश में आये।[1] अम्बिका दत्त व्यास के "रत्नाष्टक" में हास्य व उपदेश प्रधान आठ कहानियों का सग्रह है तथा वेंकट रामशस्त्री के "कथा शतकम्" में देशी–भाषाओं की सौ लघु कथायें सन्निहित हैं। व्यास जी द्वारा कृत "कथा कुसुमम्" में भावपूर्ण कहानियो का समावेश है। 1900 ई० संस्कृत कथाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण वर्ष है, क्यों कि इस वर्ष तीन कथा संग्रह प्रकाश में आये।

1. कथा संग्रह – केरल वर्मवलिय कोइतम्बुरान।
2. कथा कल्पद्रुम – "अरेवियन नाइट्स" का अनुवाद – अप्पाशास्त्री राशिवडेकर।
3. शेक्सपियर नाटक कथावली– मेरी लम्ब के "टेल्स फ्राम शेक्सपियर" का अनुवाद– मेडिपल्ली वेंकट रमणाचार्य।

इन सग्रहों में से प्रथम तो सामाजिक व मनोवैज्ञानिक लघु कथाओं का संग्रह है तथा अन्तिम दो अनूदित कृतियॉ हैं।

व० अनंताचार्य कोडम्बकम् ने 1901 ई० में "कथामञ्जरी" तथा "नाटक कथा" ये दो कथा सग्रह प्रकाश मे लाये। मन्दिकल राम शास्त्री की रचना "कथासप्तति" 1904 ई० में प्रकाश में आई तथा के० तिरूनारायण अयंगर की "गद्यकथा" संग्रह 1910 ई० मे प्रकाश में आयी। ये दो कहानी संग्रह इस युग के सर्वोत्कृष्ट संग्रह कहे जा सकते हैं।

---

1 उद्धत "आधुनिक संस्कृत साहित्य", डॉ0 हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन 45ए, खुल्दाबाद, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ– 136–39

इसके अतिरिक्त सैकडो कथायें समयानुसार प्रकाशित हुईं जो निम्न वर्गो में विषयानुसार विभाजित की जा सकती हैं।

पौराणिक कथायें :

"मणिकुण्डलापाख्यान" "दधीच्युपाख्यान" तथा "पौराणिकी काचिकथा" (अप्पाशास्त्री राशिवडेकर), "उषाहरणम्" (उपेन्द्रनाथसेन कृत), "शिवहास्यम्" (मनुजेन्द्रदत्त कृत), "सत्यदेव–कथा" (रामावतार शर्माकृत), "भद्रसोमा" चारूचन्द्रवन्द्योपाध्याय कृत।

उपदेश प्रधान :

"अदूरदर्शिता", "संशयात्मा विनश्यति" (द्वारका नाथ शर्मा), "शत्रुसंकीर्णे कथ वस्तव्यम्" (नन्दलाल शर्मा) कृत, "दशापरिणतिः", "चित्रकार चातुर्यम्", "कुटिल मतिनिमि गोमायुः", "बकचापलम्", "भगवद् भक्तः", "किमर्थ सद्गुरूः" (अप्पाशास्त्री राशिडेकर) कृत, "व्याघ्री विवाहार्थी श्रृगालः", "वशीकृत भूतः", "धर्मस्यासूक्ष्मागतिः", "ईश्वरस्यधनदानक्रमः" "राक्षसप्रश्नम्", "बुद्धिमाहात्म्यम्" (नयचन्द्र सिद्धान्त भूषण भट्टाचार्य) कृत।

भावात्मक और मनोवैज्ञानिक :

"मदीयः स्वप्नः" (रामनाथ शास्त्री), "सत्यो बालचरः" "विषया समस्या", "बालक भृत्यः" (भट्ट–मथुरानाथ शास्त्री), "साधुमणिः" (के० श्रीनिवास), "रामोनास्तीह भूतले" (उपेन्द्र चन्द्र व्याकरणातीर्थ), "छापापथः" (चन्द्रचूड़ शर्मा), "प्राधान्यवादः", "विप्रलब्धाः" (अप्पाशास्त्री राशिवडेकर) कृत।

हास्य एवं व्यंग्यपरक :

"लालाव्यायोगः", "चपण्डुकः", "शिष्या", "फाल्गुनी गोष्ठी" (भट्ट मथुरानाथ शास्त्री), "कलिप्रादुर्भाव" (वाई० महालिंग शास्त्री), "दर्दुर विलापः" (चन्द्रचूड़ शर्मा), "वेषमाहात्म्यम्", "व्यसन विमोक्ष", "पुरोहितधौर्त्यम्" (अप्पाशास्त्री राशिवडेकर)।

सामाजिक :

"अपत्यविक्रम.", "क्षुत्कथा", "दीनकन्यका" (विधुशेखर भट्टाचार्य), "वासन्ती" (दिवेन्द्र ब्रह्मचारी), "एकवार दर्शनम्", "दमनीया", "अनावृता" (भट्ट मथुरानाथ शास्त्री), "ममगृह रहस्यम्" (विश्वेश्वर शर्मा), "पल्लिच्छविः" (उपेन्द्र नाथसेन), "श्रीमती विद्यासुन्दरी देवी" (अप्पशास्त्री राशिवडेकर), "स्त्री चरितम्", "नैष्ठिक ब्रह्मचारी", (चारूचन्द्र वन्द्योपाध्याय)।

प्रणय सम्बन्धी :

"प्रेमणः प्रतिदानम्", "दीक्षा" (भट्ट मथुरानाथ शास्त्री) "यथार्थ प्रेमिका", "आदर्श पति." (चारूचन्द्र वन्द्योपाध्याय)।

ऐतिहासिक :

"क्षत्रिय–पराक्रम" (हरिप्रसाद नर्मदेश्वर), "अंगुलिमालः", "पुरूराजः पौरूषम्", "भारतध्वजः", "विजयिघण्टा", "अत्याचारिणः परिणामः", "पृथ्वीराज पौरूषम्" "आल्हा च ऊदलश्च", "सिंह दुर्गे सिंह वियोगः", "वीरवाणी", "कृत्रिम वूनदी", "चिर अमर हवे बलिदाने", "सामन्त संग्रामः", "अनुपताः" (भट्ट मथुरानाथ शास्त्री), "बहूपचिकीर्षा–पन्नाधाय" (द्वारका नाथ शर्मा), "क्षत्रकथा–गौतम बुद्ध" (विधुशेखर भट्टाचार्य), "सयोगिता स्वयंवर" (परशुराम शर्मा वैद्य)।

विविध :

"दानी दिनेश.", "करूणा कपोती च युवती च" (भट्ट मथुरानाथ शास्त्री), "परिहासाचार्य", (परशुराम शर्मा वैद्य)।

मौलिक लेखन व अनुवाद की पद्धति के अतिरिक्त सार प्रस्तुतीकरण की पद्धति को भी इस युग के लखको ने स्वीकार किया जो इस प्रकार है–

1 "रघुवंश सार"– (1900) दत्तात्रय वासुदेव निगुडकर

2. "भास कथा सार"– वाई महालिग शास्त्री (1897–1965)

3 "कादम्बरीकथासार"– (1900)– नन्द लाल शर्मा

4. "चन्द्रापीड चरितम्"– (1909)– व० अनन्ताचार्य

5. "कादम्बरी कथासार"– आर०वी० कृष्णमाचार्य– (1874–1944)

6. "कादम्बरी कथासार"–त्रयंबक शर्मा काले– (1916)

7. "संक्षिप्त कादम्बरी"– (1916)– काशी नाथ शर्मा

8. "हर्षचरित सार"– व० अनन्ताचार्य

9. "हर्षचरित सार"–आर०वी०कृष्णमाचार्य– (1874–1944)

10 "उदयन चरितम्"–18 अध्याय व० अनंन्ताचार्य।

* * * * *

''कथा की काव्यशास्त्रीय संघटना''

(क) काव्य-विभाजन में कथा का स्वरूप एवं स्थान :

(1) काव्य का स्वरूप :

काव्य शब्द 'कु शब्दे धातु से ण्यत्' प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है। काव्य के दो पक्ष हैं–(1) अनुभूति और (2) अभिव्यक्ति। कवि अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति के माध्यम से श्रोता, दर्शक या पाठक तक सम्प्रेषित कर उसे आनन्द मग्न करता है। अभिव्यक्ति के अनेक स्वरूप हो सकते हैं। यही कारण है कि साहित्य के अन्तर्गत काव्य एव काव्यशैलियों के अनेक रुप प्राप्त होते हैं। अनुभूतियों का ग्रहण नेत्रोन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय द्वारा होता है। इन्द्रियग्राहिता के आधार पर काव्यशास्त्रियों ने काव्य के दो भेद किये हैं–दृश्य एवं श्रव्य।[1]

भरत ने दृश्य काव्य के पुनश्च दो भेद किये हैं–(1) रुपक (2) उपरुपक।

शैली के आधार पर श्रव्य काव्य के भी तीन भेद किये जा सकते हैं–(1) गद्य काव्य, (2) पद्य काव्य, (3) चम्पूकाव्य[2]।

कथा की अभिव्यक्ति प्राय. गद्य के माध्यम से होती आयी है किन्तु कभी–कभी उनमें गद्य के साथ पद्य का भी प्रयोग बहुतायत रुप में हुआ है।

(2) कथातत्व :

काव्य का वह अपरिहार्य तत्व है जिसके बिना काव्य रचना सम्भव नहीं है। कथातत्व काव्य का मूलाधार है। भारतीय वाङ्मय में ही नहीं अपितु विश्व वाङ्मय के अन्तर्गत किसी भी विद्या के ज्ञान हेतु चाहे वह दार्शनिक हो, साहित्यिक हो, अथवा भौतिक या अधिभौतिक हो कथा तत्व का आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार साहित्य की प्रत्येक विधा में कथा तत्व का होना अनिवार्य है। अतैव दशरूपक–कार रूपकों के प्रमुख तीन तत्व मानते हैं–

---

1. "दृश्यश्रव्यत्व भेदेन पुनः काव्यंद्विधा मतम्।
   दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।।""नाट्यशास्त्र"–32/385
2. गद्यं पद्य च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्।"–"काव्यादर्श"1/11.

1 वस्तु, 2 श्रोता, 3 रस।[1]

अरस्तू ने भी–कथावस्तु को "ट्रेजडी" की आत्मा माना है। एक अतिलघु कथा का सूत्र कथातत्व से संयुक्त होने पर विशालग्रन्थ का आकार ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार कथातत्व काव्य का प्राण तत्व है।[2]

(3) कथातत्व एवं कथावस्तु में भेद :

सस्कृत आचार्यो ने कथातत्व को विभिन्न नामों से अभिहित किया है–"कथातत्व, वस्तु, कथानक, इतिवृत्त, कथावस्तु आदि" किन्तु सूक्ष्म अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इनमें कुछ मौलिक भेद अवश्य है। "भरत ने कथावस्तु को इतिवृत्त कहा"।[3]

"दशरूपककार धनञ्जय ने इसे वस्तु कहा"[4]

"साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी इसे वस्तु कहा"[5] अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कथातत्व, वस्तु और इतिवृत्त का प्रयोग समान अर्थ में हुआ है और कथावस्तु या कथानक का प्रयोग दूसरे अर्थ में। वस्तुतः कथातत्व वह सूत्र है जिसके आधार पर किसी भी काव्य की रूपरेखा तैयार की जाती है। इसी सूत्र को एक नाटककार–उसे नाटकीय लक्षणों से युक्त करके जब रचना करता है तो वह विधा नाटक कहलाती है। इसी प्रकार एक "महाकाव्यकार" उसे महाकाव्य के लक्षणों से

---

1 इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजात रामायणदि च विभाव्य वृहत्कथा च।
आसूत्रयेत्तदनु नेतृरसानुगण्याच्चित्रा कथामुचितचारूवच प्रपञ्चै.।
"दशरूपक" प्रथमप्रकाश, कारिका 129, पृ0 106

2 "The plot contains the kemel of that action which is the busibess of tragedy to represent."
Poetry and Fine Art : Butcher Page 337.
उद्धत – "नाटक के तत्व–सिद्धान्त और समीक्षा", विष्णु कुमार त्रिपाठी, पृ0 661

3 "इतिवृत्त तु काव्यस्य शरीर परिकीर्तितम्।
पञ्चिभि सन्धिभिस्तस्य विभागाः परिकीर्तिताः।।"
"इतिवृत्त द्विधा चैव..... . .. . ।"
भरत, "नाटयशास्त्र", एकविंश अध्याय, श्लोक 1–2

4 वस्तुनेता रसस्तेषा भेदक ।"
"वस्तु च द्विधा।" "दशरूपक", प्रथम प्रकाश, कारिका 16–17, पृ0 12

5 कथायां सरस वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्–।, साहित्य दर्पण 6/332

युक्त करके उसमे रसभाव आदि के अनुसार परिवर्तन, परिवर्धन करता है तो वह रचना महाकाव्य बन जाती है ठीक इसी प्रकार कथाकार जब उसे कथा के वैशिष्ट्य से युक्त कर देता है तो वह रचना कथा कहलाती है। इस प्रकार एक कथासूत्र ही कथावस्तु का रूप ग्रहण करती है। इसी प्रकार कहा जा सकता है कथातत्व इतिवृत्त या Plot साहित्यिक आवरण ओढने से पूर्वावस्था का नाम है तथा कथावस्तु या कथानक साहित्यिक ढॉचे का नाम है।

कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सम्पूर्ण चराचर जगत आतिदैविक, आतिभौतिक, परिस्थितियॉ भौतिक सुख–दुःख, जन्ममृत्यु, जय–पराजय, उत्थान, पतन इत्यादि परिस्थितियॉ कथावस्तु के विषय बनकर कवि को काव्य निर्माण हेतु प्रेरणा प्रदान करती हैं। भूत–भविष्य वर्तमान की समस्त घटनायें कथावस्तु के अन्तर्गत समाहित होती हैं। इस प्रकार जीवन का कोई भी रहस्य संसार का कोई भी विषय कथावस्तु से अछूता नही है।

(4) कथावस्तु का महत्व :

समस्त संस्कृत वाङ्मय "शिवेतरक्षतये" तथा "सद्यः परिनिर्वृतयै" आदि महान उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सर्जित है। अतः संस्कृत साहित्य की प्रत्येक विधा में यह उद्देश्य कूट–कूट कर भरा है। संस्कृत–साहित्य की कथावस्तु में मानव की समस्त शाश्वत प्रवृत्तियों का चित्रण हुआ है। कुछ काव्याचार्यों ने चर्तुवर्ग फल प्राप्ति को ही काव्य का उद्देश्य माना था किन्तु अन्त में बात "सद्यः परनिर्वृतयै" अर्थात् लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति पर ही टिकती है। काव्य का यह उद्देश्य वस्तु के माध्यम से ही संभव होता है। **अतः कथावस्तु के महत्व को सभी आचार्यों ने एक स्वर से स्वीकारा है।**[1]

---

1 "Tragedy is essentially an imitation not of persons out of action and life, of happiness and misery........and gainth most powerful elements of attraction in a tragedy the penpeties and discovering are part of the plot "
—Aristotle "on the art of poetry" Translated by Ingram by water.

(5) कथा का शास्त्रीय रूप :

"चितिपूजिकार्यकुम्बि चर्चिश्चेति" सूत्र से कथ–आड्–टाप् प्रत्यय से कथा शब्द का निर्माण हुआ है।

कथा अभिब्यञ्जना की वह विधा है जिसके स्वरूप में अगणित विविधतायें समय–समय पर जुडती रहती हैं, यही कारण है कि कथा की कोई ऐसी परिभाषा जिसके माध्यम से कथा के सम्पूर्ण स्वरूप को समझा परखा जा सके, निर्मित नहीं हो सकी है। अधिकांश परिभाषा कथा के बाह्य स्वरूप को ध्यान में रखकर प्रस्तुत की गई है।

(6) कथा और आख्यायिका :

दण्डी, सुबन्धु और बाण से भी बहुत पहले कथा और आख्यायिका के नाम से गद्य–काव्य का भेद किया जाने लगा था और उनके विशिष्ट लक्षण निर्धारित हो चुके थे और कथाकारो द्वारा इनके पालन करने की अपेक्षा भी की जाती थी। सर्वप्रथम "अभिनवगुप्त" कथा और आख्यायिका का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–आख्यायिका उच्छ्वास, वक्त्र और अपरवक्त्र आदि छन्दो से युक्त होती है और जिनमें यह नही रहता वह कथा होती है।[1]

"विद्यानाथ" भी अभिनवगुप्त का अनुसरण करते है, वे "हर्षचरित" को आख्यायिका के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।[2]

कुमारस्वामी ने "प्रतापरूद्रयशोभूषण" की रत्नापण नामक टीका में कथा और आख्यायिका के स्वरूप का कथन तो किया है, किन्तु कोई नवीन बात न कहकर अभिनवगुप्त के ही मत का समर्थन किया है, साथ ही वे दण्डी के मत का अनुसरण करते हुए यह तर्क देते हैं कि कथा और आख्यायिका में केवल नाम मात्र का ही भेद है उनकी जाति में कोई अन्तर नहीं है, दोनों की जाति एक है। साहित्यदर्पणकार

---

1 "आख्यायिकोच्छ्वासदिना वक्त्रापरवक्त्रादिना च युक्ता। कथा तद् विरहिता।"
—"ध्वन्यालोक", तृतीय उद्योत, लोचन पृ0 324.

2 "वक्त्र चापरवक्त्र च सोच्छ्वासत्व भेदकम्।
वर्ण्यते यत्र काव्यज्ञैरसावाख्यायिका मता।।"
"यत्र वक्त्रापरवक्त्र नामानौ वृत्तविशेषौ वर्ण्येये
सोच्छ्वास परिच्छिन्नाख्यायिका हर्षचरितादि।"
—"प्रतापरूदृयशोभूषण" पृ0 96.

विश्वनाथ ने विस्तारपूर्वक दोनो के स्वरूप का विवेचन किया। उनके अनुसार आख्यायिका कथा की भॉति ही गद्य का एक प्रकार है, जिसमें कवि के वंश का तो वर्णन रहता ही है साथ ही कहीं–कही अन्य कवियो का भी वर्णन होता है। यत्र–तत्र पद्य भी प्रयुक्त होते हैं और कथाशों का विभाजन आश्वासों में किया जाता है, आर्या, वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दो मे से किसी एक छन्द द्वारा आश्दास के प्रारम्भ में किसी अन्य विषय के व्याज से वर्णनीय विषय की सूचना दी जाती है, उन्होंने आख्यायिका का उदाहरण "हर्षचरित" को रखा है।[1]

कथा और आख्यायिका में भेद सिद्ध करते हुये आचार्य विश्वनाथ पुनः कहते हैं कि कथा में सरस इतिवृत्त होता है और उसमें आर्या, वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है। प्रारम्भ मे पद्यों द्वारा मङ्गलाचरण की योजना करने के पश्चात् खल–निन्दा, प्रशंसा आदि का भी उपन्यास किया जा सकता है।[2] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार आर्या, वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का व्यवहार, दोनों का प्रयोग कथा और आख्यायिका दोनों में हो सकता है, किन्तु आख्यायिका में इन छन्दों का प्रयोग आश्वास के प्रारम्भ मे कथावस्तु की सूचना देने के निमित्त किया जाता है जबकि कथा में इनका प्रयोग मङ्गलाचरण, निन्दा, खल–प्रशंसा आदि के विधान में किया जाता है।

काव्यालंकार मे भामह ने आख्यायिका का लक्षण प्रस्तुत किया है उनके अनुसार जिसके शब्द, अर्थ, तथा समास, अक्लिष्ट तथा श्रव्य हों, जिसका विषय उदात्त हो और जो उच्छ्वासों से युक्त हो, ऐसी गद्यमयी संस्कृत रचना आख्यायिका होती है। इसमें नायक अपने चरित्र का वर्णन स्वयं करता है तथा समय–समय पर घटित घटनाओं के

---

1 "आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनांच वृत्त पद्यं क्वचित्–क्वचित्।।
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावत्रापरवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्।।
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थ सूचनम्।"
–"साहित्यदर्पण", 6 / 334–336

2 "साहित्य–दर्पण" परिच्छेद 6, पृ0 226.

सूचक वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द प्रयुक्त होते हैं। यह कवि के अभिप्राय विशिष्ट कथनों से युक्त और कन्याहरण, सग्राम, वियोग तथा उदय आदि से युक्त होती हैं।[1]

विश्वनाथ द्वारा दिया गया आख्यायिका का लक्षण भामह के लक्षण से यत्र्तत्कचित मेल खाता है।

आचार्य रुद्रट ने कादम्बरी और हर्षचरित को लक्ष्य में रखकर कथा और आख्यायिका के भेद का निरूपण किया है। इनके द्वारा दिये गये आख्यायिका का लक्षण आचार्य विश्वनाथ और भामह द्वारा प्रतिपादित लक्षण का मिश्रित रूप कहा जा सकता है।[2]

आचार्य आनन्दवर्धन ने भी कथा और आख्यायिका मे भेद को स्वीकार करते हुए सघटना विवेचन के प्रङ्ग में इनका उल्लेख किया है। इनके द्वारा दिया गया आख्यायिका का लक्षण अन्य आचार्यों से पृथक है। आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार आख्यायिका में प्रचुरता से मध्यम समास युक्त या दीर्घसमास युक्त संघटना होती है, क्योंकि गद्य में काव्य–सौन्दर्य विकट वन्ध से आता है, कथा में विकट वन्ध का प्राचुर्य होने पर भी रस–वन्ध में कहे हुए औचित्य का अनुसरण करना चाहिए।[3]

---

1 "सस्कृतानुकूल श्रव्य शब्दार्थ पद वृत्तिना।
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता।
वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्।
वक्त्रचापरवक्त्र च काले भाव्यर्थशासि च।।
कवेरभिप्राय कृतै. कथनै. कैश्चिदकिता।
कन्याहरण सग्राम विप्रलम्भोदयान्विता।।"

—भामह, "काव्यालकार", 1/25–27

2 "पूर्वदेव नमस्कृत्य देवगुरूर्नोत्सिहेत् स्थितेष्वेषु।
काव्य कर्त्तुमिति कवीं शसदाख्यायिकायां तु।।
तदनु नृपे वा भक्ति परगुणे सकीर्तनंऽथवा व्यसनम्।
अन्यद्वा तत्करणे कारणमाक्लिष्टममिदध्यात्।।
अथ तेन कथैव यथा रचनीयाख्यायिकापि गद्येन।
निजवशं स्वं चास्याभिदध्यात्न त्वगद्येन।।
कुयदित्तोच्छ्वासान् सर्ववदेषा मुखेष्वनाद्यानाम्।
द्वे द्वे चार्थे श्लिष्टे सामान्यार्थे तदर्थाय।।"

........रूद्रट, काव्यालंकार, सत्यदेव चौधरी द्वारा सम्पादित, 16/24–27

3 "पर्यायबन्ध परिकथा खण्डकथा सकल कथे सर्ग बन्धोऽभिनेयार्थमाख्यायिका कथे इत्येवमादय।"

... ."ध्वन्यालोक", तृ० 30, पृ० 323

तथा
"आख्यायिकाया तु भूम्ना मध्यम समास दीर्घ समासे एव सघटने।
गद्यस्य विकट बन्धाश्रयेण छायावत्वात्। तत्र च तस्य प्रकृष्य माणत्वात्।
कथायां तु विकटवन्ध प्राचुर्येऽपि गद्यस्य रसबन्धोक्तमौचित्यमनु सर्तव्यम्।"

वामन कथा और आख्यायिका के भेद सम्बन्धी विचार को अधिक महत्व नहीं देते। उनके अनुसार काव्य के अन्य भेदों के सम्बन्ध में अन्य ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

आचार्य दण्डी कथा और आख्यायिका को पृथक भेद न मानकर दोनों को एक ही गद्यकाव्य का भेद स्वीकार करते हैं।[1]

यद्यपि दण्डी के समय तक कथा और आख्यायिका ये दोनों विधायें पृथक रुप में प्रतिष्ठित हो चुकल थल किन्तु दण्डी इसके विरूद्ध थे। अतः उन्होंने दोनों में नाम–मात्र का अन्तर बताकर उन्हें एक सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उनके द्वारा दिये गये विचार इस प्रकार हैं–

1. आख्यायिका का वर्णन सिर्फ नायक करता है, किन्तु कथा का वर्णन नायक के अलावा अपर व्यक्ति भी कर सकता है। नायक द्वारा अपने गुणों का वर्णन करना दोषपूर्ण नहीं, क्योंकि वह भूतार्थ शंसी (व्यतीत घटनाओं का वर्णनकर्ता मात्र) होता है। अतः आख्यायिका का वक्ता नायक ही हो यह अनिवार्य नहीं। अन्य व्यक्ति भी उसका वक्ता हो सकता है। इसलिए वक्ता का भेद दोनों को पृथक करने में समर्थ नहीं हो सकता।[2]

2 दण्डी के काल में यह धारणा थी कि आख्यायिका में ही कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ आदि विपत्तियों का वर्णन रहता है–कथा में नहीं।

. .... "ध्वन्यालोक", तृ 30 पृ0 326–27.

1 .. "तत्कथाख्यायिकेत्येका जाति' सञ्ज्ञा द्वयांकिता।
अत्रौवान्तर्मविष्यन्ति शेषाश्चाख्यान जातयः।। "काव्यादर्श" 1/28

2 ' 'इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल।।
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिन ।।
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्रान्यन्यैरुदीरणीत्
अन्यो वक्ता स्वयंवेति की दृग्वा भेदकारणम्।।"
"काव्यादर्श", 1/23–27.

परन्तु ये विशेषतायें सर्गबद्ध महाकाव्य, खण्ड काव्यादि की हैं। सिर्फ आख्यायिका की ही विशेषतायें नहीं। यदि इनका प्रयोग कवि आख्यायिका मे कर सकता है तो कथा में भी स्वतन्त्र रुप में इनका प्रयोग कर सकता है।[1]

3. आख्यायिका वक्त्र, अपरवक्त्र छन्दो से युक्त रहती है और कथा इससे रहित होती है। परन्तु दण्डी के अनुसार–जिस प्रकार कथा में आर्या आदि छन्दों का प्रयोग होता है, उसी प्रकार स्वरूप में कोई परिवर्तन किये बिना वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग भी स्वतन्त्र रूप से किया जा सकता है। यदि पूर्वपक्षी यह प्रश्न उठाये कि आख्यायिका में उच्छ्वास होते हैं और कथा में लम्ब, लुम्बकादि तो दण्डी का उत्तर है कि कथांशो के विभाग को परिच्छेद, उच्छ्वास, अध्याय आदि नाम देने से कोई अन्तर नहीं पडता क्योकि यह तो सिर्फ नाम मात्र का भेद है, स्वरुपगत कोई भेद नहीं।[2]

4 दण्डी के समय तक में आख्यायिका केवल संस्कृत में लिखी जाती थी और कथा पालि, अपभ्रंश, संस्कृत में लिखी जाती थी।[3] आख्यायिका राजवंशानुकीर्तन से सम्बद्ध होने के कारण संस्कृत में लिखी जाती थी किन्तु कथा लोक काव्य भी लोकप्रिय थी, जबकि राज्याश्रित कवि आख्यायिका को ही अपनाते थे। दण्डी ने कथा को विशेष महत्व दिया, कथा के प्रति अपना आग्रह दिखाकर लोक–काव्य को प्रोत्साहन एवं

---

1 "कन्या हरण संग्राम विप्रलम्भोदयादयाः।
सर्गबनध समा एव नैते वैशेषिका गुणः।।"
"काव्यादर्श", 1–24.

2 "वक्त्र चापरवक्त्रं चा सोच्छ्वासत्व च भेदकम्
चिह्नमाख्यायिकायाश्च प्रसंगेन कथास्वपि।।
आर्यादिवत् प्रवेशः कि न वक्त्रापर वक्त्रयो।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु कि ततः।।" –"काव्यादर्श", 1/26–27

3 "कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते।" – "काव्यादर्श", 1–38

संवर्धन प्रदान किया, इसलिए उन्होंने अपने निष्कर्ष में कथा को प्रथम स्थान दिया।[1] इसके विपरीत भामह ने आख्यायिका को ऊँचा ले जाने का प्रयास किया।

5. दण्डी के समय तक यह धारणा भी प्रचलित थी कि कवि अपने अभिप्राय विशिष्ट कथनो का प्रयोग कथा में ही करता था, आख्यायिका में नहीं। किन्तु इस वैशिष्ट्य से कथा और आख्यायिका में भेद स्थापित नहीं किये जा सके। इस प्रकार के अभिप्राय गर्भित चिन्हों का प्रयोग अनेक प्रबन्धों में हुआ है। जैसे–भारवि ने सर्ग की समाप्ति वाले छन्द में "लक्ष्मी" शब्द का प्रयोग किया है और माघ ने "श्री" शब्द को।[2] अत. इस भेद को उचित नहीं माना जा सकता है।[3]

(ख) शुकसप्तति-परिचय :

(1) कर्ता : शुकसप्तति एक रोचक और लोकप्रिय कथा–संग्रह है। विश्वसनीय एवं समापेक्षित सामग्रियों के अभाव ग्रस्तता के कारण शुकसप्तति के लेखक के सम्बन्ध में कुछ भी सुनिश्चित कह पाना संभव नहीं है। शुकसप्तति के प्राप्त संस्करणों में भी इसके कर्ता का नामोल्लेख नहीं मिलता। संस्कृत साहित्य के इतिहासकार भी सर्वथा मौन साधे हुए हैं ऐसी परिस्थिति में इसका कर्ता कौन था यह कह पाना कठिन है। सिर्फ इतना ही पता चलता है कि हेमचन्द्र ने (1088–1172 ई०) में इसका वर्णन किया है।[4]

(2) काल : शुकसप्तति के कर्ता के समान इसका काल भी अनिश्चित है। ए०बी० कीथ के अनुसार–इसका अस्तित्व हेमचन्द्र द्वारा 12 वीं शताब्दी में प्रमाणित

---

1 "तत्कथाख्यायिकेत्यिका जातिः सञ्ज्ञा द्वयांकिता।"

2 S.K. De, "Some Problems of Sanskrit poetics". P. 67. Foot Note

3 "कविभावकृत चिह्नमन्यत्रापि न दुष्यति।
मुखमिष्टार्थ ससिद्धौ किं हि न स्यात् कृतात्मनाम्।।"

4 Hemachandra (1088-1172 A D.) was aware of its existence. The work must have been composed before 1000 A D
A History of the Sanskrit Literature by V Varadacari, Page 125, शुकसप्ततिः, पेज सख्या 17, व्याख्याकार–रमाकान्त त्रिपाठी।

होता है। जब वे एक घटना को उद्धत करते हैं जो यद्यपि हमारी पुस्तकों के पाठ में नही है किन्तु जिसके अंतर्गत एक तोता एक बिल्ली के द्वारा पकड़ लिया जाता है। इससे सभवतः यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि शुकसप्तति के बहुत अनेक पाठ पहले से ही वर्तमान थे।[1] अतएव यह कहा जा सकता है कि 1000 ई० से 1400 ई० के मध्य इसकी रचना हुई होगी।

(3) अनुवाद :" 14 वीं शताब्दी में इसका फारसी में अनुवाद हुआ है। सिन्दबाद जहाजी की कहानियों का आधार यही है, जैसा कि 'किनाथुल सिन्दबाद' के लेखक मसूदी (956 ई०) ने लिखा है कि यह कथा राजा कुरूष के समय भारत में लिखी गई थी और इसका आधार भारतीय ही है। इसका भारतीय नाम 'सिद्धपति की कथा' है जो कि अब अप्राप्त है। यद्यपि इसका यूनानी अनुवाद सिंतिपास तथा 'हिब्रू—संदवार' आदि प्राप्य हैं। 'नख्शबी' ने 22,29,30 ईसवी में साहित्यिक फारसी में इसका तूतिनामह नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया, जिसका बाद में तुर्की में भी अनुवाद हुआ।

(4) वर्ण्य विषय : शुकसप्तति का स्वरूप अत्यन्त मनोहारी, सहज, आकर्षक एवं लोक—कल्याणकारी है। यह 70 कहानियों का सर्वोत्कृष्ट संग्रह है।

हरिदत्त नामक सेठ के मदनविनोद नाम का एक पुत्र था। जो विषयासक्त कुपुत्र था। जो पिता के समक्ष भी कृतघ्न था, जिसके आचरण एवं अनुशासनहीनता को देखकर सेठ को सपरिवार ही अत्यंत त्रासदी की अनुभूति करनी पड़ी।

त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण जो कि हरिदत्त सेठ का मित्र था, उसने सेठ के कष्ट निवारणात् अपने घर से नीति—निपुण शुक और सारिका लेकर उसके घर जाकर कहा—मित्र! इस सपत्नीक शुक का पालन—पोषण पुत्रवत् करो, इसके आचरण मात्र से तुम्हारे सारे कष्टों का निवारण हो जायेगा।

---

1 ए०बी० कीथ सस्कृत साहित्य का इतिहास।

हरिदत्त ने शुक को प्राप्त कर पालन–पोषण का प्रभार पुत्र मदन–विनोद को प्रदान कर दिया। मदन विनोद पालन–पोषण में निर्देशानुसार रत हो जाता है। संयोगवश शुक के उपदेश से वह कुमार्गगामी सेठ का पुत्र परवर्तित होता हुआ विनयशील बन गया। व्यापार के सम्बन्ध मे इसे परदेश जाना पड़ता है। उस समय मदन विनोद दोनो पक्षियों को अपनी पत्नी के सुपुर्द करता है।

तत्पश्चात् मदन विनोद की पत्नी शोकयुक्त कतिपय समय निर्वाह करती है और कालक्रम के साथ व्यभिचारिणी सखियों द्वारा समझायी गयी पर–पुरूष की संगति मे अभिलाषावती वह सखियो के निर्देशानुसार परपुरूष के साथ रमण करने के लिए ज्यों ही चली, त्यों ही "मैना" ने "मत जा" इत्यादि वचनों से फटकारा। इस पर उसने मैना को मरोडकर मार डालना चाहा, किन्तु वह उड़ कर दूर चली गयी।

शुक चतुर है, वह उसके आचरण का अनुमोदन करता है। "तुम पर–पुरूष की संगति के आनन्द का अनुभव करो, यह ठीक ही है, किन्तु यदि प्रतिकूल तथा संकट का अवसर पड़ने पर उससे बचने की तुम्हें बुद्धि हो, तभी जाओ, क्योंकि विपत्ति आ पडने पर दुष्ट तमाशा ही देखते हैं जैसे–एक मास भर की भूखी पूर्णा दूती, बनिये के लड़के के केश पकड़कर उसकी पत्नी खींचने लगी तो, वह तमाशा ही देखती रही।" इस बात के सुनने पर मदनविनोद की पत्नी में कहानी सुनने की उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है और प्रत्येक दिन कहानी सुनने की इच्छा प्रकट करती है और तदानुसार एक कथा प्रत्येक दिन सुनती हैं और बीच–बीच मे शुक यह शिक्षा देता रहता है कि ऐसी विपत्ति पर कैसा आचरण करना चाहिए। इस तरह 70 कहानियॉ सुनाकर उसके शील की रक्षा करता है और अन्त में मदनविनोद आ जाता है और अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगता है।

अन्ततः यह कहना अनुचित न होगा कि इन 70 कहानियों को लेखक ने इतने अच्छे ढंग से ग्रथित किया है कि वह शुक प्रतिदिन उस युवती के सामने एक नयी

समस्या प्रस्तुत करता है तथा उसकी विरहजन्य पीड़ा को दूर करने का प्रयत्न करते हुए व्यभिचार से मोडता है। इतनी कठिन साधना अत्यन्त सरलता और मनोञ्जन के साथ पक्षी के द्वारा करने का प्रयास कवि की विलक्षण प्रतिभा नही तो और क्या?

(5) ग्रन्थ का आधार: मानव–जाति का यह क्रम युगारम्भ से अविरल गति से भविष्य की ओर से संचालित होता आ रहा है। प्रत्येक युग की उनकी कुछ विशिष्ट विशेषतायें होती हैं। हर–युग तत्कालीन परिस्थितियों एवं लोक–भावनाओं का समादर करता हुआ अग्रसर है। अन्य कहानी संग्रहों की तुलना में शुकसप्तति अपने युग की सर्वाधिक प्रसिद्ध रोचक एव कल्याणकारी रचनाओं में से एक है। स्पष्ट रूप से यह नही कहा जा सकता है कि शुकसप्तति की कथायें मूलरुप से किसी कथाग्रंथ का अंश है अथवा स्वतंत्र रुप से इन 70 कहानियों की रचना की गई है।

भारत में वैदिक युग के भारतीयों के जीवन के प्रारम्भिक काल से ही अनेक प्रकार की कहानियॉ लोगों में प्रचलित हैं। साधारण सी कहानी को एक निश्चित उद्देश्य के लिए उपयोग में लाया जाना उपदेशात्मक कथा का जीवनोपयोगी ज्ञान समझाने के लिए एक निश्चित मार्ग बन जाना कहानियों के इतिहास में एक स्पष्ट तथा महत्वपूर्ण कदम था। **ऋग्वेद** [1] के एक प्रसिद्ध सूक्त का जिसमें यज्ञ के अवसर पर मन्त्रगान करते हुए ब्राह्मणों की तुलना टर्र–टर्र करने वाले मेढकों से की गयी है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्यो तथा प्राणियों के बीच एक प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर लिया गया है।[2] उपनिषदों में यह तथ्य और स्पष्ट रूप से प्रकट होता है जहाँ पक्षियों और पशुओं को उपदेश का माध्यम बनाया गया। आगे चलकर हमें महाभारत में अनेक पशुओं से सम्बन्धित कथायें प्राप्त होती हैं। वास्तव में "महाभारत" में हमें वह बीजभूत आधार प्राप्त होता है जो "पञ्चतन्त्र" के विकास के हेतुभूत सामग्री की ओर दृढ़तापूर्वक संकेत करता है। बौद्ध एवं जैन साहित्य में भी पशुओं से सम्बन्धित

---

1 ऋग्वेद 7.103

2 छान्दोग्य उपनिषद 1.12, (iv) 1, 5, 7 f.

कथाओ का उपयोग मनुष्यों को उपदेश देने के लिए किया गया है। बौद्ध लोग पिछले जन्मो मे बुद्ध और उनके समकालीन पुरुषों की महत्ता एवं उनके कार्यों का उदाहरण देने के लिए पशुओं की कथाओं का आधार लिया करते थे। इस "महाभारत"[1] से तथा पतञ्जलि द्वारा लोकन्यायों के उल्लेख से यह माना जा सकता है कि इस प्रकार की पशु–कथा प्रचलित थी किन्तु उक्त कथाओ ने उस समय तक किसी प्रकार का साहित्यिक रूप धारण किया था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते।

लोक–कथाओं का प्राचीनतम संग्रह गुणाढय की "वृहत्कथा" है। 'वृहत्कथा' को कालान्तर में इतनी अधिक प्रसिद्धि मिली जिसका परिणाम यह हुआ कि प्राचीन समय की रचनाओं में तद् अपेक्षया भिन्न कहानियॉ बहुत कम सुरक्षित हैं। प्राचीनतम कथा–ग्रन्थ "पञ्चतन्त्र" के साथ–साथ पशु–पक्षियों की कहानियों की परम्परा नष्ट–प्राय हो गयी। बाद में वृहत्कथा के तीन संस्करण बने–वृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर और वृहत्कथाश्लोकसंग्रह। इन संस्करणों में प्राचीन कथाओं को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया। यद्यपि इस विषय में विद्वानों में मतभेद है कि इन संस्करणो में प्राप्त कथायें "वृहत्कथा" में प्राप्त कथाओं के ही मूलरुप हैं। ये कथायें गद्य–पद्यात्मक हैं। वृहत्कथा की कथायें उपदेशात्मक मनोरञ्जन प्रधान एवं विशिष्ट उद्देश्य के कथन से समन्वित हैं।

ऐसे ही कथाग्रंथों की विकास की परम्परा में "शुकसप्तति" की 70 कहानियों का विकास हुआ। जो अत्यन्त रोचक हैं। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन 70 कहानियो का मूलाधार "वृहत्कथा" थी अथवा कोई अन्य लोक–कथासंग्रह। ऐसा प्रतीत होता है कि शुकसप्तति एक स्वतंत्र लोक–कथा ग्रन्थ है जिसका उद्देश्य पत्नी को कुमार्ग पर जाने से बचाना है। यद्यपि इस मूल तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि इसका रचयिता पूर्व में प्राप्त कथा ग्रन्थों से प्रभावित नहीं था।

---

1 Mahabharata, (iv) 88 FF.

(6) **ग्रन्थ का महत्व** : शुकसप्तति के इन 70 कहानियों में स्त्रियों के व्यभिचार सम्बन्धी कामशास्त्र द्वारा प्रथित उन तमाम चातुर्य का विश्लेषण कवि ने जिस चातुरी से प्रस्तुत किया है, संभवत. उतनी सरलता से अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। ये सम्पूर्ण कहानियाँ उपदेशपरक, रोचक, सरल गान में कहीं–कहीं पद्य में हैं। कुछ प्राकृत में भी पद्य समुपलब्ध हैं।

वस्तुतः इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक समावलोकन करने पर जिज्ञासु कोपबुद्धिजीवी अनुसंधान की पराकाष्ठा पर पहुंचने पर इस तथ्य को दावे के साथ प्रस्तुत करने के लिए पूर्णरुपेण परिपक्वास्था में प्राप्त होने पर एक निष्कर्ष पर अवश्य ही पहुंचता है, जो सारगर्भित एवं किसी देशकाल एवं परिस्थिति का जीता जागता वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करने मे समर्थ ही नहीं अपितु सिद्ध हो जाता है। प्राचीनकाल से आज तक विभिन्न काल–खण्डों, स्थान विशेष व विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार अनेक लोक–कल्याणकारी एव सचालक प्रकृति के समक्ष सहज ही दर्शित होते हैं। इन्ही काल–क्रमादि के परिप्रेक्ष्य में "शुकसप्तति" कथा का जन्म घटनाचक्र, वृहत कथाह्न शुक एवं सारिका के विशिष्ट ज्ञान–विज्ञान की पारदर्शिता की उपयोगिता, उसकी आवश्यकता, हरिदत्त नामक सेठ की परिवारिक प्रतिकूलता, असहयोग जटिलता की समस्याओ से ग्रसित संकटकालीन परिस्थितियो के रुप में अपने अस्तित्व को लाना तथा उसका प्रचार–प्रसार एवं संज्ञान उपयुक्त ज्ञानियों, विज्ञानियों, कवियों तथा मीमासकों का ध्यान आकर्षित होना और समग्ररुप में लिपिबद्ध करके साहित्य में लाने की प्रबल आकांक्षा जिसका संचरण तत्कालीन इसका मूलाधार है। मुख्यतया अशिष्टता, अश्लीलता, साथ ही साथ नैतिकता का संयोग तदैव विद्यमान होकर इस ग्रन्थ को गुणाढ्य कृत वृहत्कथा जो कि लोककथाओं का प्राचीनतम ग्रन्थ है उससे भी अग्रसर होता हुआ अद्यावतु हम सभी अपने लोक जीवन व्यवहार एवं परस्पर सम्बन्धों की श्रृंखला पर प्रदर्शित कर रहे हैं। कुल मिलाकर उपर्युक्त यह रचना संस्कृत साहित्य के कथा–साहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय है।

(7) प्रचार एवं प्रसार : शुक सप्तति यद्यपि मनोरञ्जक है किन्तु इसे उतनी प्रसिद्धि एवं ख्याति नही मिल पायी जिनती अन्य कथाग्रन्थों को मिली। संभवतः इसका एक प्रमुख कारण यह रहा होगा कि समाज मे बहुत समय तक वृहत्कथा, हितोपदेश एव पञ्चतन्त्र की कहानियो का प्रचार था, सभवत· लोग उन्हीं ग्रन्थों को प्रधानरूप से पढते थे। धीरे–धीरे कालान्तर मे ऐसा लगता है कि समाज एवं मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में कुछ परिवर्तन आया और हल्के–फुल्के कहानियो के माध्यम से मनोरञ्जन करने की प्रवृत्ति का समाज में जन्म हुआ। यद्यपि शुकसप्तति की कथायें आदर्शात्मक हैं तथापि शुकसप्तति की कथाओं का समाज में प्रसार अपेक्षाकृत कम हुआ।

(8) शुकसप्तति कथा अथवा आख्यायिका :

कथा के उपर्युक्त विभाजनों मे से यदि मात्र दो मुख्य भेदों कथा और आख्यायिका को ही माना जाय तो इसका तात्पर्य है कि समग्र कथा सहित्य के ग्रन्थों का भी, विभाजन हो जायेगा जिसमें कुछ "कथा" के अन्तर्गत आयेंगे और कुछ "आख्यायिका" के। अब प्रश्न यह उठता है कि प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के अध्येय ग्रन्थ 'शुक–सप्तति' को किस वर्ग मे रखा जाय। आख्यायिका का पूर्वपक्षी विद्वान इसमें आख्यायिका के लक्षणो की उपस्थिति बताकर उसे आख्यायिका सिद्ध करने का प्रयास करेगा तो दूसरी ओर कथा के उत्तरपक्षी भी इसमें कथा के लक्षणों का प्रवेश बताकर उसे कथा ही सिद्ध करने का अटूट प्रयास करेंगे।

आख्यायिका के सामान्य लक्षण हैं–उच्छ्वासों से युक्त होना, वक्त्र, अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होना, ऐतिहासिक व्यक्ति का वर्णन होना, संस्कृत में रचना होना, कवि के अभिप्राय विशिष्ट कथनों से युक्त होना तथा कन्याहरण, संग्राम आदि विपत्तियों से युक्त होना।

आख्यायिका के इन लक्षणों में से कतिपय "शुकसप्तति' में प्राप्त होते हैं। यथा–सस्कृत मे इसकी रचना है तथा कहानियो में वियोग आदि विपत्तियों का वर्णन है।

इसी प्रकार कथा की सामान्य विशेषतायें हैं ... कथा में सरस इतिवृत्त होता है, कहीं–कहीं आर्या, वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दो का प्रयोग हो, लम्ब, लुम्बकों में विभाजन हो, संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रश में रचना हो, कुलीन व्यक्ति स्वगुण कथन नहीं कर सकता अतएव कथा मे नायक स्वयं अपना चरित्र वर्णन न करे, कथा के प्रारम्भ में पद्यों द्वारा देवस्तुति, सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निन्दा इत्यादि का विधान होता है।

आख्यायिका की ही भॉति कथा की भी कतिपय विशेषताये "शुक सप्तति" में प्राप्त होती है इस ग्रन्थ का इतिवृत्त अतिसरस और रोचक है जो पाठक के मन में ग्रन्थ के प्रति रुचि बनाए रहता है, यह ग्रन्थ संस्कृत में रचित है, नायक द्वारा स्वयं अपने चरित्र का वर्णन नही किया गया है, तथा कथा के प्रारम्भ में पद्यों द्वारा माता शारदा की स्तुति की गई है तथा चिन्तामणि भट्ट और श्वेताम्बर जैन मुनि के संस्करणों में गद्य के मध्य पद्य भी प्राप्त है।

इस प्रकार कथा और आख्यायिका दोनों विधाओं की कुछ–कुछ विशेषतायें "शुकसप्तति" ग्रन्थ में प्राप्त होती हैं। किन्तु इनका विभाजन आधार रहित और अधिक स्थिर नहीं माना जाता है और अन्ततः एकमात्र कथा को ही महत्व दिया जाता है। आख्यायिका को कथा के समक्ष नहीं माना जाता है तथा "कथा सरित्सागर" में कहानियों को कथा कहे जाने के कारण, कथा का प्रयोग कहानी के अर्थ में होने के कारण "शुकसप्तति" के समस्त संस्करणों में इन कथाओं का अभिधान कथा रुप में ही होने के कारण यथा "यशोदेवी की कथा", "बालपण्डिता' की कथा "मंडक की कथा" आदि चिन्तामणि भट्ट ओर श्वेताम्बर जैनके संस्करणों में मङ्गलाचरण के पश्चात् कथा का ही अभिधान होने से तथा स्वयं शुक द्वारा प्रत्येक कथा के सुनाने पर यदि विपत्ति में पड़ने

पर ऐसी बुद्धि रखती हो तो जाओ–इस प्रकार "कथा" का ही सर्वत्र प्रचुरता से प्रयोग होने के कारण यदि इन कथाओं को "कथा" ही कह दिया जाय तो अनुचित नहीं होगा।

(ग) शुकसप्तति पर अन्य ग्रन्थों का प्रभाव :

शुकसप्तति का रचयिता अन्य नैतिक आदर्शों का उपदेशक है। शुकसप्तति की प्रत्येक कथा समाज को नैतिक मूल्यों, नैतिक आदर्शो का उपदेश देने के निमित्त उपनिबद्ध की गई है। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ग्रन्थकार ने इन कथाओं की रचना तो की है साथ ही अन्य ग्रन्थों से भी सहायता ली है। शुकसप्तति के अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि कवि पर अन्य ग्रन्थों का प्रभूत प्रभाव पड़ा जिसके अन्तर्गत लोक–कथाये, रामायण, महाभारत, किरातार्जुनीयम्, रत्नावली, कालिदास आदि प्रमुख हैं।

पुराणो का भी यथेष्ट प्रभाव शुक सप्तति पर देखा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि रचनाकार अपने आदर्शों को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए एवं उसे और प्रभावशाली बनाने के निमित्त इन ग्रंथों के आदर्शस्थापक श्लोकों को उद्धृत किया है।

राज नियम का ज्ञान कराने हेतु ग्रन्थकार प्रभावती को शुक द्वारा उपदेश देने के माध्यम से हर पाठक को यह संदेश देताहै कि राजा का शरीर इन्द्र से ऐश्वर्य, अग्नि से तेज, यम से क्रोध, कुबेर से वित्त, राम एवं कृष्ण से बल एवं दृढ़ता लेकर रचा जाता है।[1] राजा के देवत्व स्वरूप का वर्णन "भुयोभूयः" वैदिक वाङ्मय में दिखाई पड़ता है। राजा देवताओ का अंश होता है इसीलिए उसके लिए देव सम्बोधन का प्रयोग परवर्ती साहित्य में किया गया है। स्पष्ट है कि ग्रन्थकार पर वैदिक वाङ्मय का प्रभाव था।

---

1 इन्द्रात्प्रभुत्वं ज्वलनात्प्रतापं क्रोधं यमाद्वैश्रवणाच्च वित्तम्।
सत्त्वस्थिरे रामजनार्दनाभ्यामादाय राज्ञः क्रियते शरीरम्।।
शुकसप्तति:, श्लोक स0 49, पृ0 सं0 39

महाभारत का प्रभाव :

ग्रन्थकार महाभारत से खूब प्रभावित था। भिन्न–भिन्न प्रङ्गगों में महाभारत के कई श्लोक उसी रुप मे शुकसप्तति मे उद्धृत कर दिये गये हैं। प्रजापालक राजा के सम्बन्ध में महाभारत का निम्नलिखित श्लोक उदधृत किया गया है। जो कि भीम के सम्बन्ध में है हूबहू इस ग्रंथ मे उदधृत किया गया है।

मा वृकोदर पादेन एकादशचमूपतिम्।।
पञ्चानामपि यो भर्ता नासाप्रकृतिमानवी।।[1]

हे भीम! दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेना का मालिक है, पैर से इसका मर्दन मत करो–अपमानित मत करो। पॉच आदमियों का भी जो पोषण करता है वह मानवी प्रकृति नहीं है।

मनुष्य का मित्र धन होता है जिसके पास धन है वही संसार में पण्डित समझा जाता है इस कथन के समर्थन रूप में शुकसप्तति में महाभारत के श्लोक को पुनः उदधृत किया गया है।

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च श्रूयन्ते किल भारत।
दरिद्रो व्याधितो मूर्ख. प्रवासी नित्यसेवकः।।[2]

हे भारत! दरिद्र, रोगी, मूर्ख, विदेशस्थ और नित्यसेवक–ये पाँच जीते हुए भी मृत समझे जाते हैं।

महाभारत के उदधृत श्लोकों से स्पष्ट है कि ग्रन्थकार महाभारत से प्रभावित था।

रामायण का प्रभाव :

भारत को नैतिक शिक्षा का उपदेश देने वाले रामायण से भी ग्रन्थकार प्रभावित था। शुकसप्तति में यत्र–तत्र पात्र रामायण के श्लोकों से यह तथ्य स्वतः स्पष्ट है कि–स्वर्णनिर्मित लङ्का के प्रति विरक्ति एवं अयोध्या के प्रति आसक्ति को व्यक्त करने

---

1 शुकसप्तति., श्लोक स0 50, पृष्ठ सं0 40
2 शुकसप्तति', श्लोक सं0 57, पृष्ठ सं0 44.

वाले राम के द्वारा भरत के प्रति कहा गया यह श्लोक–लोभ नही करना चाहिए। इस आदर्श को व्यक्त करने के संदर्भ में उद्धृत किया गया है।

सर्वस्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।
पितृक्रमागतायोध्या निर्धनापि सुखायते।।[1]

श्रीरामचन्द्र जी कह रहे हैं। हे लक्ष्मण! सर्वतः स्वर्णनिर्मित लङ्का मुझे पसन्द नहीं, वंश परम्परा प्राप्त अयोध्या धन–रहित भी मुझे सुखकर है।

कालिदास का प्रभाव :

शुकसप्तति के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कालिदास का प्रभूत प्रभाव ग्रन्थकार पर पड़ा है। यही कारण है कि नैतिक आदर्शो का कथन करने वाले कालिदास के कतिपय श्लोक शुकसप्तति में यत्र–तत्र उद्धृत किये गये हैं। मित्रता का आदर्श प्रस्तुत करने वाला कुमारसम्भव का निम्नलिखित श्लोक बिना किसी परिवर्तन के इस ग्रन्थ मे उद्धृत हुआ है।

"यत. सता सन्नतगात्रिसङ्गतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते।।"[2]

कुमारसम्भव महाकाव्य में ब्रह्मचारी वेश धारण किए शिव ने पार्वती से कहा है– हे (स्तनों के भार से)! झुके शरीर वाली, मनीषियों ने कहा है कि सज्जनों के साथ सात पग चलने मात्र से अथवा सात वाक्य बोलने मात्र से मित्रता हो जाती है।

हर्षदेव का प्रभाव :

महाराज हर्षदेव की रचनाओं का यथेष्ट प्रभाव ग्रन्थकार पर पड़ा। महाराज श्री हर्षदेव का समय छठीं शताब्दी के आस–पास माना जाता है। हर्षकृत रत्नावली के निष्कम्पक के अन्तर्गत वर्णित निम्नलिखित श्लोक को हू–ब–हू रूप में इस ग्रन्थ में

---

1 शुकसप्तति श्लोक सं0 314, पृष्ठ स0 263.
2 शुकसप्तति पृष्ठ सं0–265 (कुमारसंभव पञ्चम अंक)

उद्धृत किया गया है। जिसमें कर्म की अपेक्षा भाग्यवादिता की अवश्य सम्भाविता को सिद्ध किया गया है।

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः।।[1]

अनुकूल दैव दूसरे द्वीप से, समुद्र के मध्य से, दिगन्त से अभीष्ट अथवा प्रिय को अकस्मात् शीघ्र लाकर मिला देता है।

भारवि का प्रभाव :

किरातार्जुनीय जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का भी पर्याप्त प्रभाव कवि पर पड़ा। किरातार्जुनीय का अत्यन्त प्रसिद्ध श्लोक जो राजनीतिक आदर्श के संदर्भ में है, शुकसप्तति में प्राप्त होता है। "शठेशाठ्य समाचरेत्" के आदर्श को उपस्थित करने वाला यह श्लोक शुकसप्तति के 21 वीं (कथा) के अन्तर्गत उद्धृत किया गया है।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभव भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिताइवेषवः ।।[2]

जो लोग कपटीजनों के साथ कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करते, वे पराभव को प्राप्त होते हैं, उन सरल प्रकृति लोगों को विश्वास उत्पन्न कर शठ, खुले शरीर वालों को बाण की भॉति नष्ट कर देते हैं।

इन उद्धरणों के अतिरिक्त – इस ग्रन्थ में यत्र–तत्र उपमान के रुप में कवि ने अनेक ग्रन्थों के पात्रों का वर्णन किया है। जैसे–महाभारत के पात्र –भीम, दुर्योधन का।[3] द्यूत क्रीडा में युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को दाँव में लगाने का वर्णन हुआ। शिव पुराण एवं नीतिशास्त्र के प्रसङ्गों का भी यत्र–तत्र उल्लेख मिलता है।[4]

1 शुकसप्तति–श्लोक सं0 61, पृष्ठ सं0 47
2 शुक सप्तति –श्लोक सं0 123, पृष्ठ सं0 106.
3 शुकसप्ततिः–श्लोक स0 336, पृष्ठ सं0 279.
4 शुक सप्ततिः–श्लोक स0 96, 97, 135 पृष्ठ संख्या– 76, 77, 115

इसके अतिरिक्त नारद द्वारा मदन नामक गंधर्व की पुत्री मदनमञ्जरी को शाप देने की कथा का वर्णन भी इसमें प्राप्त होता है।[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शुकसप्ततिः का रचनाकार वैदिक वाङ्मय, अनेक पौराणिक ग्रन्थो एवं लौकिक काव्यों एवं नीतिशास्त्र का ज्ञाता था।

* * * * *

1 अथान्यदा नारद समायातः। सोऽप्यस्या रूपमवलोक्य मूर्च्छित सकामोऽभूत्। पश्चाल्लब्धसंज्ञेन ऋषिणा सा शप्ता। शुकसप्तति, पृष्ठ स0 279–280 (चौखम्भा प्रकाशित, सम्वत् 2023)।

तृतीय अध्याय

शुकसप्तति कथा परिचय

"शुकसप्तति "कथा–परिचय"

(1) ग्रन्थ का मूल स्वरूप :

शुकसप्तति के प्राप्त प्रधान दो संस्करणों साधारण और परिष्कृत के विवेचन के पश्चात् यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि इस ग्रन्थ का मूल स्वरूप क्या था। यह ग्रन्थ मूलतः गद्यात्मक था या पद्यात्मक या गद्य–पद्य मिश्रित था, यह भी निश्चित रूप से नहीं कह सकते। प्रसिद्ध इतिहासकार मङ्गलदेव शास्त्री का विचार है[1] कि इसका मूलरूप सम्भवतः सरल गद्य में रहा होगा जिसके बीच–बीच में सूक्त्यात्मक पद्य और कथाओं के आदि और अन्त में उनके विषय वर्णन परक पद्य रहे होंगे।

शुकसप्पति के साधारण संस्करण के आधार पर कुछ विचारकों ने ऐसा विचार प्रकट किया है कि यह कथाग्रन्थ अपने मूलरूप में चाहे जिस भी रूप में रहा हो किन्तु बाद में अन्तोत्गत्वा इसने एक पद्यात्मक रूप ग्रहण कर लिया था। इस कथा ग्रन्थ मे प्राकृत पद्यों की विद्यमानता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः यह सग्रह अपने मूलरूप में प्राकृतभाषा में रहा होगा किन्तु इस प्रश्न का कोई निश्चित समाधान प्रस्तुत नही किया जा सकता। ग्रन्थ का कलेवर मनोरञ्जक है। लोकभाषा के साहित्य पर अपने प्रभाव को छोडकर इस ग्रन्थ का कोई विशेष आकर्षण नहीं है।

किसी ठोस सामग्री के अभाव में अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि इसका मूलरूप गद्यात्मक रहा होगा जिसके बीच–बीच में सूक्तियों के कथन हेतु पद्यों का प्रयोग किया गया रहा होगा। यद्यपि शुकसप्तति से पूर्व प्राप्त कथाग्रन्थ जैसे वृहत्कथा आदि जो प्राप्त नहीं हैं किन्तु उसका संस्करण विशेष रूप से कश्मीरी संस्करण पद्यात्मक है। इस प्रकार पञ्चतन्त्र भी गद्यात्मक एवं पद्यात्मक है हितोपदेश भी भी पद्यात्मक है। इसी क्रम में शुकसप्तति के विषय में भी ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की जा

---

1 संस्कृत साहित्य का इतिहास, मगलदेव शास्त्री

सकती है। इसी क्रम में शुकसप्तति के विषय में भी ऐसी अवधारण प्रस्तुत की जा सकती है कि शुकसप्तति भी गद्यात्मक एवं पद्यात्मक है। शुकसप्तति का मूलस्वरूप भी गद्यात्मक एवं पद्यात्मक रहा होगा किन्तु निश्चित रूप से निर्णायक रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

(2) <u>आधार कथा</u> :

कथा सहित्य में शुकसप्तति 70 कहानियों का एक ऐसा संग्रह है जिनमें तरह–तरह की समस्याओ के हल प्राप्त होते हैं। इस संग्रह में सम्पूर्ण कथायें उपदेशप्रद ही हैं यह सर्वथा सत्य नहीं है जैसा कि संग्रह की आधार कथा से लगता है।

चन्द्रपुर नाम के नगर में विक्रमसेन नाम का राजा रहता था। उसी नगर में हरिदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम श्रृंङ्गार सुन्दरी था उसके पुत्र का नाम मनदविनोद था और पुत्रवधू प्रभावती थी जो सोमदत्त नामक सेठ की पुत्री थी।

यथा नाम तथा गुणः के आधार पर यह मदनविनोद अपना सारा समय अपनी युवती पत्नी के प्रेमालाप में ही व्यतीत कर देता था और पिता की शिक्षा का अपमान करता था। जुआ, मृगया, वेश्या, आदि में निरन्तर आसक्त रहता था। कुमार्गगामी इस पुत्र से पिता हरिदत्त सपत्नीक दुःखी रहता था। उन्हें दुःख से पीड़ित देखकर हरिदत्त का मित्र त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण ने अपने घर से नीतिकुशल शुक एवं सारिका उपहार में भेट किया और यह कहा कि तुम्हारा प्रस्तुत दुःख इनसे दूर हो जायेगा। इन शुक सारिकाओं को ग्रहण कर हरिदत्त ने अपने पुत्र मदन विनोद को दे दिया। जिन्हें अपने शयन कक्ष में पिंजड़े में स्थापित कर उसने पालन–पोषण किया।

एकबार एकान्त में शुक ने मदन विनोद से कहा–हे मित्र! "तुम्हारे व्यसन आसक्ति से दुःखी तुम्हारे माता–पिता के ऑखों से जो अश्रु समूह निरन्तर भूमि पर

गिरता है उस पाप से देवशर्मा की तरह तुम्हारा भी पतन सम्भाव्य है। कहीं–कहीं पर यह पक्षी रूपधारी गन्धर्व थे ऐसी चर्चा भी प्राप्त होती है[1] बुद्धिमान शुक के उपदेश से कुमार्ग–गामी वह मदन विनोद सदाचार के मार्ग का अवलम्बन कर लेता है और अत्यन्त विनयशील बन जाता है। इसके बाद वह मदनविनोद माता–पिता की आज्ञा से एवं पत्नी की राय से व्यापार की दृष्टि से देशान्तर को चला गया। इसके अनन्तर पति विरह से दुःखी मदनविनोद की पत्नी कुछ समय निर्वाह करती है और व्यभिचारिणी अपनी सखियों के द्वारा प्रेरित होकर परपुरुष के प्रति अभिलाषवती हो जाती है, एव रमण के लिए श्रृङ्गार कर ज्योंही घर से निकलना चाहती है त्यों ही सारिका पक्षी ने उसे रोका और फटकारा तब उसने (प्रभावती) गला मरोड़ कर सारिका को विनष्ट करना चाहा, तत्काल वह उड़कर दूर चली गयी। इसके अनन्तर कुछ क्षण रूककर अपने इष्ट देवता को स्मरण कर एवं ताम्बूल आदि ग्रहण कर ज्यों ही चलती है उसी समय तथा कथित वह शुक बोल पड़ा कि आपका कार्य सिद्ध हो, कहॉ जा रही है? इत्यादि वाक्य से पूछा। शुक वचन को शकुन मानकर मुस्कराते हुए उसने कहा कि, किसी परपुरूष के पास जा रही हूँ। इस बात को सुनकर शुक उसके कार्य का अनुमोदन करते हुए कहता है कि–"तुम परपुरुष के संङ्गति के आनन्द का अनुभव करो यह तो ठीक है किन्तु यह कार्य अत्यन्त दुष्कर है, निन्दित है एवं कुल स्त्रियों के लिए बाधित है।" प्रतिकूल एवं सङ्कट का अवसर पड़ने पर उससे बचने के लिए तुम्हारे पास बुद्धि होनी चाहिए। तभी जाओ क्योंकि–विपत्ति पड़ जाने पर दुष्ट लोग केवल तमाशा ही देखते हैं और अपमानित करते हैं। क्योकि एक मास तक भूखी पूर्णा दूती, बनिये के लड़के के केश पकड़कर उसकी पत्नी खींचने लगी तो वह तमाशा ही देखती रह गयी।[2] यह सुनकर अपनी व्यभिचारिणी सखियों के साथ उस

---

1 ए०बी० कीथ–अनुवादित मङ्गलदेवशास्त्री, पृष्ठ–361

2 कौतुकान्वेषिणो नित्यं दुर्जना व्यसनागमे।
मासोपवासिनी यद्वद्वणिक्पुत्रकचग्रहे।।

प्रभावती ने शुक का बहुत समादर किया और घबराकर उपर्युक्त आख्यान सुनने के लिए प्रार्थना किया।

इसके अनन्तर वह शुक निरन्तर मनोरञ्जक कहानी सुनाता है और बीच–बीच मे वैसी–वैसी विपत्ति आने पर कैसा आचरण करना चाहिए इस प्रकार का प्रश्न करता है और समाधान में 70 कहानियॉ सुनाते हुए उसके शील की रक्षा करता है और कुछ ही दिनों में उसका पति परदेश से मदन विनोद आ जाता है और दोनों (पति–पत्नी) सुखपूर्वक अपने जीवन का समय व्यतीत करते हैं।

शुकसप्तप्ति की यह आधारभूत कथा अन्य 70 कथाओ को जन्म देती है। जो प्रभावती के चरित्र की रक्षा करने में पर्याप्त सक्षम है।

(3) शुकसप्तति की कथाओं का परिचय :

कथा- 1
"देशशर्मा की कथा"

शुकसप्तति की प्रथम कथा मदनविनोद को सद्ज्ञान देने हेतु शुक द्वारा कही गयी है–

पञ्चपुर नगर मे सत्यशर्मा नामक एक ब्राह्मण अपनी पत्नी धर्मशीला और पुत्र देवशर्मा के साथ रहता था। उस (पुत्र) ने विद्याध्ययन के बाद पिता से छिपाकर अन्य देश में गङ्गा के तट पर तप किया।

एक दिन वह तपस्वी गंङ्गा के तट पर जप कर रहा था कि उसी समय एक उड़ती बगुली ने उसके शरीर पर मलत्याग कर दिया। क्रोध से रक्तनेत्र उस तपस्वी ने ज्यों ही ऊपर देखा त्यों ही अपनी क्रोधाग्नि से भस्म हुई बगुली को भूमि पर गिरी देखकर (बगुली को भस्म कर) वह नारायण नामक ब्राह्मण के घर भिक्षा मॉंगने गया। उसकी पत्नी अपने पति के सेवा में लगी थी उसके (स्त्री) विलम्ब करने से वह क्रुद्ध

शुकसप्ततिः, श्लोक सं० ४ पृ० सं० ९

हुआ। उस स्त्री ने (ऐसा देखकर) निरीह पक्षी के हत्यारे उस तपस्वी को फटकारा और कहा– 'तेरे क्रोध ने उस बगुली को जला दिया, पर मेरा वह कुछ नहीं कर सकता है।'

उस स्त्री से गुप्त पातक जान लिये जाने के कारण वह डर गया और विस्मित हुआ। (गुप्त पातक जाने लेने का रहस्य पूछने पर) उस स्त्री ने उसे धर्मव्याध नामक मांसविक्रेता के पास वाराणसी नगरी में भेजा। वहाँ पहुँचने पर धर्मव्याध ने शुभागमन के विषय में पूछकर अपने घर ले जाकर, अपने माता–पिता को भक्ति के साथ भोजन देकर, तत्पश्चात् उसे भोजन दिया। उसके बाद उसने व्याध से ज्ञान का कारण पूछा– 'वह सती कैसे ज्ञानवती है और तुम कैसे ज्ञानवान हुये?' उस धर्मव्याधस ने कहा–

जो उत्तम, मध्यम, अधम सभी प्रकार के विकारों से अनासक्त रह, अपने कुलक्रममागत धर्म का पालन भलीभाँति करता है, जो सदा माता–पिता की सेवा करता है वह साधारण मनुष्य भी सच्चा गृहस्थ है, वही मुनि, साधु, योगी, और धार्मिक है।[1]

मैं और वह सती इस प्रकार से ज्ञानी हुये है। तुम अपने माता–पिता का परित्याग कर घूम रहे हो, मुझे तुम ऐसे व्यक्तियों से सम्भाषण नहीं करना चाहिए किन्तु अतिथि समझकर मैने तुमसे बात की।

इस प्रकार कहने पर उस ब्राह्मण ने धर्मव्याध से अपने कर्तव्य तथा गुरूजन महिमा के सम्बन्ध में पूछा। उसने कहा–

जो अपने पूज्य जन की पूजा नहीं करते, जो अपने मान्यजन का सम्मान नहीं करते वे संसार में निन्दित होते हुए जीते हैं और मरने के बाद स्वर्ग नहीं जाते हैं।[2]

---

1 निजान्वयप्रणीत य· सम्यग्धर्मं निषेवते।
उत्तममाधममध्येषु विकारेषु पराङ्मुखः।।
स गृही स मुनिः साधुः स च योगी स धार्मिकः
पितृशुश्रूषको नित्यं जन्तुः साधारणश्च यः।।
शुकसप्ततिः, श्लोक सं०, 3, 4,, पेज सं० 5

2 न पूजयन्ति ये पूज्यान्मान्यान्न मानयन्ति ये।
जीवन्ति निन्द्यमानास्ते मृताः स्वर्गं न यान्ति च।।
शुकसप्ततिः श्लोक स० 5, पेज पृष्ठ 6

इस प्रकार उस व्याध से समझाया गया वह अपने घर गया और माता–पिता की सेवा कर ससार में कीर्तिमान हुआ और मृत्युपश्चात भी अपने यशः शरीर से अमर हो गया।[1]

इसलिए "तुम अपने कुल क्रमागत वणिग्धर्म का स्मरण करो तदनुसार कर्म करो और माता–पिता के प्रति विनयशील बनो।"[2]

इस प्रकार उपदिष्ट हुआ वह मदनविनोद माता–पिता को नमस्कार कर उनकी आज्ञा लेकर, पत्नी से पूछकर एवं विदा होकर नौका द्वारा विदेश चला गया।

तत्पश्चात् व्यभिचार मार्ग पर जाने के लिए उद्यत प्रभावती से शुक कहता है –तुम कुमार्ग पर मत जाओ अन्यथा पराभव का पात्र होगी। क्योंकि–

विपत्ति आ पडने पर दुष्ट तमाशा ही देखना चाहते हैं (कोई सहायता नहीं करता) जैसे भास भर की भूखी पूर्णा दूती, बनिये के लडके के केश पकड़ कर उसकी पत्नी खींचने लगी तो वह तमाश ही देखती रही।

तब उस प्रभावती ने शुक का समादर करते हुए घबडा कर "यह आख्यान कैसे है"– पूछा। तो शुक ने कहा–

चन्द्रावती पुरी में भीम नामक राजा था। उस पुरी में मोहन नामक सेठ का सुधन नामक पुत्र था। वह उस नगर के निवासी हरिदत्त की पत्नी लक्ष्मी के साथ रति–क्रीडा करना चाहता था किन्तु लक्ष्मी सहमत नहीं थी। तब उस सुधन ने मास भर की भूखी पूर्णा नाम की स्त्री के पास जाकर उसे खूब धन देकर, जब हरिदत्त नगर से बाहर गया तब दूती बनाकर भेजा। उसने भी प्रिय बचनों से लक्ष्मी को प्रसन्न

---

1 व्याधेन बोधितस्तेन स ययौ गृहमात्मनः।
अभवत्कीर्तिमाँल्लोके परतः कीर्तिभाजनम्।।
शुकसप्ततिः श्लोक स० 6, पेज पृष्ठ 6,

2 तस्माद्वणिग्धर्मं स्वकुलोद्भवं स्मर पित्रोश्च विनयपरो भव।
शुकसप्ततिः पृष्ठ सं० 6,

कर लिया। उसने (लक्ष्मी) कहा 'जो तुम कहो वह करूँ। पूर्णा ने कहा– जिससे कहूँ उस पुरूष के साथ रमण करो।'

इसके बाद लक्ष्मी को तैयार कर आनन्दप्रद सुरत के लिए सायंकाल के समय अपने घर ले गयी। किन्तु वह सुन्दर सुधन नामक वणिक् पुत्र किसी काम में फॅस जाने के कारण निर्दिष्ट समय पर नहीं आ सका। तब कामातुरा लक्ष्मी ने कहा–'किसी भी पुरूष को ले आओ।'

तब मूढ़ पूर्णा इती उसके पति को ही ले आयी अपने पति के आने पर उसका बचाव कैसे हो? यह तुम या तुम्हारी सखियॉ बतायें।

उन सबने कहा– 'हम नहीं जानती हैं। तुम्हीं कहो।'

शुक ने कहा– 'अपना पति ही आ रहा है'– यह जानकर उसने उसके केश पकड़कर कहा– हे शठ! सर्वदा तू मेरे सामने कहा करता है कि तुम्हारे अतिरिक्त मेरी और कोई दूसरी प्रिया नहीं है। आज मैंने तेरी परीक्षा कर ली और जान गयी।' इस प्रकार उसने कोप किया।

वह हरिदत्त उसको बड़ी कठिनाई से अत्यन्त कोमल वचनों द्वारा सान्तवना देकर अपने घर ले आया।

इस प्रकार व्यभिचारिणी सखियों समेत मदन विनोद की पत्नी प्रभावती भय एवं विस्मय उत्पन्न करने वाली शुक द्वारा कथित कथा सुनकर रात में सो गयी और परपुरूष के पास नहीं गयी।

कथा– 2
"यशोदेवी की कथा"

दूसरे दिन व्यभिचार करने के लिए उद्धत प्रभावती को शुक रोकता हुआ उसे दूसरी कहानी सुनाता है–

नन्दन नामक नगर में नन्दन नाम का एक राजा था। उसके पुत्र का नाम राजशेखर और पुत्रवधू का नाम शशिप्रभा था। उसको वीर नामक धनसेन का पुत्र देखकर कामवासना से युक्त कावमज्वर से पीड़ित हो गया। भोजन आदि नहीं करता था। अपनी माता यशोदेवी से पूछे जाने पर उसने गद्‌गद् वाणी से कारण बताया। उस राजकन्या का मिलना कठिन है। वह कैसे जिये' यह प्रश्न है। प्रभावती ने कहा– 'तुम्हीं बताओ'। शुक ने कहा– प्रभावती। यदि आज तुम परपुरूष के पास न जाओ तो बताऊँ। प्रभावती ने कहा ठीक है कहो।

तब शुक ने कहा– उस यशोदेवी ने एक कुतिया को भोजन खिला–पिला कर हिला–मिला लिया और आभूषण पहिनकर अपने साथ उसे लेकर शशिप्रभा के पास जाकर उससे एकान्त मे गद्‌गद् स्वर में कहा– मैं, तुम और यह, तीनों पूर्वजन्म में बहिन थीं। मैंने निःशङ्क और तूने सशङ्क, परपुरूष की संभोगेच्छा को पूरा किया। इसने नहीं किया। इसी कारण से इसे पातिव्रत रूप सदाचार के प्रभाव से केवल पूर्वजन्म की ही स्मृति है, भोग नहीं, और इस जन्म में कुतिया हुई। परपुरूष के सम्भोगविषयक विघ्न के कारण मुझे पूर्वजन्म का स्मरण भी नहीं है और मुझे निर्विघ्न भोग के कारण निर्विघ्न जन्म का स्मरण है। इसलिए इस कुतिया और तुझको देखकर अनुकम्पा–वश तुझसे यही कहने आई हूँ। अतः तुम्हें याचको को काङ्क्षित वस्तु देनी ही चाहिये।[1] क्योकि कहा गया है–

भिक्षुक घर–घर भीख नहीं मॉग रहे हैं, अपितु मानो यह कह रहे हैं कि याचकों को सदा दान दिया करो, अन्यथा दान न देने वाले को ऐसा ही फल मिलेगा जैसे हमें मिल रहा है– हमारी ही तरह वह भी घर–घर भीख माँगता फिरेगा।[2]

---

1 'अतस्त्वयर्थिना काङ्क्षितं दातव्यमेव।

शुकसप्ततिः, पृष्ठ सं० 16

2 कथयन्ति न याचन्ते भिक्षाहारा गृहे गृहे।
अर्थिभ्यो दीयतां नित्यमदातु. फलमीदृशम।।

शुकसप्तति., श्लोक सं० 17, पृष्ठ सं० 16

तब शशिप्रभा ने उसके गले से लिपट कर रोकर कहा— 'कल्याणि! मुझे भी पर पुरूष से मिलाओ।'

तब यशोदेवी ने उसे सान्त्वना देकर पति की जानकारी में उसे अपने घर ले जाकर अपने पुत्र से मिलाया पति ने भी उसे सखी समझकर जाने से नहीं रोका।

हे कामिनि! यशोदेवी ने इस प्रकार राजशेखर और उसकी पत्नी को धोखा देकर अपनी महती बुद्धि से अपना कार्य पूरा कर लिया। अतैव यदि तुम्हारे पास ऐसी बुद्धि हो तो परपुरूष के पास जाओ अन्यथा नहीं।

कथा-3
''राजा सुदर्शन की कथा';

विशाला नगरी में सुदर्शन नाम का राजा था। वहीं पर विमल नाम का एक बनिया था उसकी दो पत्नियों को सुन्दर रूप सम्पन्न देखकर कुटिल नामक धूर्त ने उन्हें प्राप्त करने के लिए अम्बिका देवी की आराधना कर विमल का रूप माँगा। उसका आकार प्रकार पाकर 'विमल' के बाहर जाने पर उसके घर जाकर वह धूर्त अपना आधिपत्य जमा लिया। उसने पुरस्कार रूप में धन प्रदान कर समस्त भृत्य वर्ग को अपने अधीन कर लिया। वह विमल की दोनों पत्नियों को अत्यन्त सम्मान दान आदि से संतुष्ट कर उनका सम्भोग करता रहा।

कुछ समय पश्चात् वास्तविक विमल भी द्वार पर आया तो कुटिल की आज्ञा से द्वारपाल ने उसे भीतर प्रविष्ट होने से रोक दिया, तब वह जोर से चिल्लाने लगा कि 'महान धूर्त ने हमें धोखा दिया।' इस प्रकार चिल्लाते हुए उसे देखकर कौतुक वश उसके कुल गोत्र वालों एवं बनियों का समुदाय एकत्र हो, नगरपालों एवं मुख्यमन्त्री के सामने चिल्लाने लगा— राजन्! 'महान धूर्त ने हमें धोखा दिया'।

तब राजा ने उस धूर्त को देखने के लिए अपने आदमी भेजे, उस धूर्त ने उन्हें भी धन देकर अपने अनुकूल कर लिया। धन प्राप्त कर राजा के आदमी कहने लगे, स्वामी! विमल तो घर में है, यह द्वार पर स्थित व्यक्ति ही महान धूर्त है।

तब राजा को उपाय सूझा। उसने विमल की दोनों पत्नियों को पृथक–पृथक कर पूछा। तुम दोनों को विवाह के समय पति ने कौन आभूषण और धन दिया था। विवाह के पश्चात् क्या बातचीत हुई थी? प्रथम सहवास के समय पति के साथ तुम्हारी क्या बातचीत हुई थी? तुम दोनो की माता–पिता कौन है? क्या कुल और जाति है? इस प्रकार पूछने पर दोनों ने जो पाया था, जो–जो बातें हुईं थी, जिस प्रकार प्रथम सहवास के समय शयन किया था सबकुछ बता दिया। इसके बाद राजा ने वही बाते परस्पर विवाद करते उन दोनों पुरूषों से पूछा तो रूक्मणी एवं सुन्दरी नाम्नी दोनों भार्याओ का संवाद जो कहता है वही सच है। दूसरा धूर्त है, राजा नें उसे निकाल दिया। सच्चा विमल पत्नी समेत राजा से सत्कृत हुआ और अपने घर गया। यह कथा सुनकर प्रभावती सो गयी।

कथा-4
''विषकन्या-विवाह की कथा'

सोमप्रभ नामक ब्राह्मणों की एक बस्ती थी, वहॉ सोमशर्मा नामक एक विद्वान, धार्मिक ब्राह्मण था। उसकी पुत्री विषकन्या अत्यन्त रूपवती थी, किन्तु भय के कारण उससे कोई विवाह नहीं करता था। तब सोमशर्मा वर की तलाश में पृथ्वी पर घूमते हुए जनस्थान नामक ब्राह्मणों की बस्ती में पहुँचा। वहाँ गोविन्द नामक मूर्ख एवं निर्धन ब्राह्मण रहता था। उसे उसने कन्या दे दी। उसने रोकते हुए सुहृज्जनों की भी अवज्ञाकर रूप्लावण्यवती मोहिनी विषकन्या से विवाह कर लिया। वह काम–कला प्रवीण थी एवं गोविन्द मूर्ख एवं अल्पवयस्क था। तब वह अपने रूप लावण्य एवं यौवन पर शोक करने लगी। कहा गया है कि–कामकलानिपुण पत्नी का मूर्ख पति, प्रौढ़ स्त्री का मूर्ख नायक, दानशील गुणीजन का अल्पधन– ये तीनों दुःखदायी होते हैं।[1]

---

1 अविदग्धः पतिः स्त्रीणां, प्रौढाना नायकोऽगुणी
गुणिनां त्यागिना स्तोको विभवश्चेति दुःखकृत्

शुकसप्ततिः, श्लोक सं० 23, पृष्ठ सं०– 24

वह विषकन्या एक दिन अपने पति गोविन्द से बोली मैं तुम्हारे साथ अपने पिता के घर चलूँगी तब गोविन्द बैलगाड़ी पर भार्या समेत चल पड़ा। जाते समय मार्ग मे एक युवक, वक्ता, रूपवान और शूर विष्णु नामक ब्राह्मण मिला। ब्राह्मण और विषकन्या मे परस्पर अनुराग हो गया। कहा गया है कि अन्य धनुर्धारियों को अपने सामने न ठहरने देने वाला वीर कामदेव सर्वोत्कृष्ट है जिसके पुष्पशरों के लगने से, प्रथम प्रिय के दर्शन आदि से अनुराग उत्पन्न होता है, तदन्तर क्रमशः प्रिय से मिलने का मनोऽभिलाष, निद्राभङ्ग, शारीरिक दौर्बल्य, अपने–अपने व्यापर में इन्द्रियों का आलस्य, प्रिय के अतिरिक्त अन्य विषयों में मन की विरक्ति, लज्जा का छूट जाना, उन्माद, मूर्छा और मरण इन दस दशाओ को सारा जगत प्राप्त होता है।[1]

वह पथिक पति पत्नी को खूब सुपारी पान देता, इस प्रकार उस मूर्ख ब्राह्मण ने उस विष्णु पर विश्वास कर लिया और मेरे विषय में कहीं इसका पत्नी में अत्यन्त अनुराग है ऐसा न सोचने लगे। इस भय से स्वयं उतरकर उस ब्राह्मण को गाड़ी का चालक बना दिया। पति के वृक्षों के आड़ में आ जाने पर विष्णु ने मोहिनी का भोग किया और अपने अधीन बना लिया। पति गोविन्द के आ जाने पर 'तुम चोर हो' यह कहकर विष्णु ने उसे गाडी पर चढ़ने से रोक दिया और मोहनी को ग्रहण कर गोविन्द पर आक्रमण कर दिया। विषकन्या के प्रभाव से गोविन्द विष्णु से पराजित हुआ। तब मार्ग के समीपवर्ती गाँव में जाकर गुहार लगाने लगा कि चोर ने मेरी पत्नी को ग्रहण कर लिया है।

---

1 प्रीति· स्याद्दर्शनाद्यै· प्रथममथ मनःसङ्गसङ्कल्प भावो,
निद्राछेदस्तनुत्वं वपुषि कलुषता चेन्द्रियाणां निवृत्तिः ।
हीनाशोन्मादमूर्च्छामरणमिति जगद्यात्यवस्था दशैताः
लग्नैर्यत्पुष्पबाणै स जयति मदनः सन्निरस्तान्यधन्वी।
शुकसप्ततिः, श्लोक स०–26, पृष्ठ स०– 225–26

तब ग्राम के मुखिया ने मोहिनी समेत विष्णु को पकड लिया। पूछने पर विष्णु ने उत्तर दिया कि मैने इसे विवाहा है। मेरी भार्या को मार्ग मे देखकर यह पथिक इसे ग्रहण करना चाहता है। गोविन्द ने भी पूछने पर यही उत्तर दिया। मन्त्री ने दोनों का एक ही उत्तर सुनकर जाति आदि पूछा, तीनों एक ही उत्तर देते हैं। पुनः मन्त्री ने पूछा कि तुम लोगों का यात्रा में कितने दिनों से साथ हुआ। उन लोगों ने कहा प्रातः भोजन के पश्चात साथ हुआ। तब मन्त्री ने पृथक–पृथक दोनों ब्राह्मणों से पूछा–मोहिनी ने भोजन के समय क्या भोजन किया। मोहिनी के भोजन के विषय में गोविन्द ही जानता था। दूसरा नही। तब वह दूसरा मन्त्री से निरादृत हुआ। तब मन्त्री ने गोविन्द को शिक्षा दी की इस ब्राह्मणी को धिक्कार है। इस लोक एवं परलोक में दु खदायिनी इस स्त्री का तुम परित्याग कर दो।[1]

लेकिन वह नहीं माना और उस मोहिनी को लेकर चला और मार्ग में उसी के लिए मार डाला गया।

इसलिए हे देवी! वृद्धों के सिखाने पर भी जो इस प्रकार उनके वचनों का तिरस्कार करता है वह गोविन्द ब्राह्मण की भॉति नष्ट हो जाता है।

कथा- 5
"बालपण्डिता की कथा"

उज्जयिनी नाम की नगरी का राजा विक्रमादित्य था जिसकी रानी का नाम कामलीला था। एक दिन भोजन के समय राजा ने रानी को कुछ मछलियाँ खाने को दिया जिसे रानी ने खाने क्या छूने से भी इन्कार कर दिया। तब वे मछलियाँ हँसने

---

1 धिगमा ब्राह्मणी परत्रेह च दुःखदा मुञ्च शीघ्रम।
शुकसप्ततिः, पृष्ठ स० 28

लगीं। जिसकी आवाज महल के बाहर के लोग भी सुन लिए। अब राजा अपने दरबार में उपस्थित सारे विद्वानों (मन्त्रवेत्ता, दैवज्ञ एवं शकुनवेत्ता–जनों) से पूछा लेकिन कोई इस हॅसी का कारण न बता सका तब राजा ने अपने मुख्य पुरोहित से इसी हँसी का कारण पूछा और न बताने की स्थिति में देश निकालने की धमकी दी। तब पुरोहित विषादग्रस्त हो पाँच दिन का समय मॉगकर अपने घर चला गया। जहाँ उसकी पुत्री बालपण्डिता ने उसके विषाद का कारण पूछा। उसने कहा विद्वानों को विषाद में भी प्रसन्नचित रहना चाहिए। कहा गया है– जिसे समृद्धि में हर्ष, विपत्ति में विषाद, रण मे कापुरूषता न हो, ऐसे त्रिभुवन श्रेष्ठ विरलेपुत्र को माता पैदा करती है।[1] तब ब्राह्मण ने सभी हाल कह सुनाया और कहा कि अगर जीना चाहता हूँ तो ब्राह्मणों के साथ मुझे परदेश चले जाना चाहिए। तब बालिका ने कहा कि तात्! तुमने ठीक कहा लेकिन राजा के बिना मनुष्य की कही पूजा नहीं होती।[2] क्योंकि कहा गया है कि– राजा की सेवा से साधारण व्यक्ति भी असाधारण एवं मुख्य हो जाता है तथा न करने पर असाधरण भी साधरण एवं नगण्य हो जाता है।[3] इस तरह विभिन्न सूक्तियों के माध्यम से बालपण्डिता ने अपने पिता को समझाते हुए कहा कि– हे तात्! तुम राजा के मान्य एवं प्रसन्नता के पात्र हो, तुम स्थिर हो जाओ! मत्स्यों के हॅसने का कारण राजा के आगे मै कहूँगी, तुम स्नान तथा भोजन करो।

तब ब्राह्मण के निवेदन पर राजा ने उस बालपण्डिता को बुलाकार उस मत्स्य हास्य का कारण जानना चाहा इस पर बालिका ने कहा– हे राजन्! आप अपना तिरस्कार खुद मत करो क्योंकि–राजा कोई साधारण व्यक्ति नहीं होता, वह अलौकिक रूपधारी होता है। राजा का शरीर इन्द्र से ऐश्वर्य, अग्नि से तेज, यम से क्रोध, कुबेर से

---

1 सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च भीरूत्वम्।
त त्रिभुवनत्रयतिलकं जननी, जनयति सुतं विरलम्।। शुकसप्तति:, श्लोक सं० 31, पृष्ठ सं० 32

2 परं स्वामिरहितानां न क्वापि पूजा।
शुसप्तति:, पृष्ठ सं०– 34

3 अप्रधान· प्रधान स्याद्यदि सेवेत पार्थिवम्।
प्रधानोऽप्यप्रधानः स्याद्यदि सेवाविवर्जितः।।
शुकसप्तति:, श्लोक सं०– 38, पृष्ठ –34–35

अब वह वणिक् मंदिर से प्रतिदिन पॉच मण्डक लाता और उसी से उसका भरण पोषण होता। एक दिन वणिक् भार्या (पद्मिनी) की सखी मन्दोदरी ने उससे उन मण्डको का रहस्य पूछा जिस पर पद्मिनी ने अपनी अनभिज्ञता दर्शायी तो उस सखी ने कहा कि जो इसे तुमने नहीं जाना तो तुम्हारा यौवन, रूप एव जीवन सब व्यर्थ है। तब वह अपने पति से यह रहस्य जानना चाही तो पति ने इसे दैवकृपा कहा तथा पति ने उसे समझाया कि मनुष्य की समृद्धि एवं विपत्ति, जीवन एवं मरण का कारण दैव है।

पति से अस्पष्ट जबाव पाकर उसने अनशन कर दिया। अत. पति ने उसे बहुत समझाया कि इसे कह देने पर बडी हानि एवं पश्चाताप होगा लेकिन उसने नहीं माना। कहा गया है– जिसे देव दु.ख देना चाहते हैं उसकी बुद्धि हर लेते हैं जिससे वह अपने कल्याण की बात नही समझ पाता। तब उस बुद्धि रहित ने उसे रहस्य बता दिया। तब उसने अपनी सखी से यह सारा रहस्य बताया। अब अगले दिन जब दोनों के पति गणेश जी के पास गए तो उन्होंने पद्मिनी के पति को दंडित किया तथा उसकी सखी के पति को पॉच मण्डक दे दिया। फलतः पद्मिनी को घोर पश्चाताप हुआ।

कथा- 7
"स्थगिका और ब्राह्मण कथा"

दूसरे दिन पुनः राजा ने बालिका से मत्स्य हास्य का कारण जानना चाहा तो बालिका ने कहा राजन् आप कारण न पूछें वर्ना आपको पश्चाताप होगा।

जिस प्रकार स्थगिका नाम की नायिका में आसक्त ब्राह्मण को हुआ था। वैसे ही आपको भी पश्चाताप होगा।

वत्सोन नामक नगर में वीर नामक राजा तथा केशव नामक ब्राह्मण था। वह पृथिवी पर धन के लिए देवतीर्थों, शमशानों तथा नगरों में घूमता हुआ एक निर्जन प्रदेश में पहुँचा जहाँ उसने कपिल वर्ण के कच्छप पर वीरासन से स्थित तापस को देखा तो उस विप्र ने उसके सामने हाथ जोड़कर धन की याचना की। तब उस तापस ने उसे

सिन्दूर दिया और कहा जब तुम इसे स्पर्श करोगे तो यह तुम्हें पॉच सौ स्वर्ण मुद्राएँ देगा। लेकिन तुम इसको व्यक्त मत करना अन्यथा यह लौटकर मेरे पास चला आएगा।

अब वह ब्राह्मण रत्नावती पुरी को गया जहॉ वह स्थगिका नाम की वेश्या के साथ नित्य रमण करता था। उसके नित्य के धनागम का रहस्य न जान पाने पर उस वेश्या ने अपनी भक्ति, कला एवं सेवा से उसे इतना प्रसन्न किया कि उस ब्राह्मण ने सारा राज बता दिया। जब वह ब्राह्मण रात में सो गया तो उस वेश्या ने उसका सिन्दूर लेकर धनहीन अवस्था में उसको (ब्राह्मण को) घर से निकाल दिया।

वह विप्र अपना सिदूर न पाकर 'मेरा धन हर लिया गया' चिल्लाता हुआ राजा के पास गया जहॉ कुटनी ने पूछे जाने पर कहा कि यह धूर्त मेरी पुत्री पर लुब्ध है और उसके साथ रमण करना चाहता है इसी कारण यह चोरी लगा रहा है। लेकिन राजा किसी प्रकार सिन्दूर का रहस्य जान गया। किन्तु लोगों के द्वारा वह ब्राह्मण निर्वासित कर दिया गया और सिन्दूर योगीन्द्र के पास पहुँच गया। उस विप्र की न स्थगिका ही रह गयी और न सिन्दूर ही रह गया।

इसी प्रकार राजन्! तुम्हें भी रति और प्रीति नहीं होगी।

कथा- 8
"वणिक पुत्री सुभगा की कथा"

दूसरे दिन बाल पण्डिता ने राजा के आग्रह करने पर कहा कि– राजा का शरीर बहुत महत्वपूर्ण है अतः आपको किसी भी शुभ अथवा अशुभ कार्य के विषय में आग्रह नहीं करना चाहिए। राजन्! मत्स्य हास्य का कारण कह देने पर आपकी भी हालत उस वणिक् पुत्री के समान होगी जिसका न घर ही रहा और न बाहर।

त्रिपुर नामक स्थान का राजा त्रिविक्रम था। जहाँ सुन्दर नामक वणिक् था जिसकी पत्नी अत्यन्त व्यभिचारिणी थी। वणिक् उसे नियंत्रित नहीं कर पाता था। एक बार उसके पति द्वारा घर से बाहर निकलने पर रोक लगाने पर वह अपने सखी की मदद से अपने घर में आग लगवा कर अपने उपपति से मिलने यक्ष मन्दिर में चली

गई। वह पुरूष घर जलता देखकर मन्दिर छोड़कर आग देखने चला गया जिससे वह उपभोग नहीं कर सकी। अतः उसका न घर रहा न बाहर का आनन्द ही।

कथा-9
"पुष्पहास और रानी की कथा"

शुक ने कहा देवि। बालपण्डिता ने राजा से कहा यदि मेरा कहा हुआ आप नहीं समझ है तो सुनिये– सब मन्त्रियों में श्रेष्ठ पुष्पहास मंत्री बिना अपराध बन्दी है। वह क्यो बन्दी बनाया गया है?

राजा बोला– यह पुष्पहास जैसा नाम से है वैसा गुण से भी है। जब यह मेरी सभा में हॅसता है तो इसके मुख में पुष्पों की झडी लग जाती है। यह बात अन्य राज्य मण्डलों में फैल गयी। तब उन राजाओं ने अपने आदमी इस कुतूहल की सत्यता का पता लगाने के लिए भेजे। उनके आने पर वह नहीं हॅसा और पुष्पों का ढेर भी नहीं लगा। इस कारण उसे कारागार में बन्द कर दिया गया है।

तब बालपण्डिता ने कहा– वह मन्त्री ही अपने हॅसने और मत्स्यों के हँसने का कारण कहेगा तब राजा ने पुष्पहास मंत्री को वस्त्रादि देकर मन्त्रिपद पर स्थापित कर मत्स्यहास का कारण पूछा।

मन्त्री बोला राजन्! मेरी पत्नी अन्य पुरूष में रत् हो गयी ऐसा जान लेने के कारण में नहीं मैं नहीं हॅसा था।

राजा ने ऐसा सुनकर फूलों के गुच्छों से रानी को प्रताडित कर उसके मुख की ओर देखा। उस प्रहार से उसने मिथ्या मूर्छा का अभिनय किया। पुष्पहास उस रानी को देखकर हँसने लगा और पुष्पों का ढेर लग गया। राजा ने मन्त्री से कहा– हमारे दुःख मे क्यों हँस रहे हो? मन्त्री ने कहा–राजन्! तुम्हारी रानी रात में सेवक जनों द्वारा छड़ी से आहत होकर भी मूर्छित नहीं होती, इस समय मूर्छित हो गयी– यही

हँसने का कारण है। इस प्रकार राजा ने सभा विसर्जित कर दी और उस रानी को महल से निकाल दिया।

कथा-10

''श्रृङ्गारवती की कथा''

राजपुर नामक स्थान पर देवसाख्य नामक एक गृहपति था, उसके श्रृङ्गारवती और सुभगा नाम की दो पत्नियाँ थी।

वे दोनों परपुरूष मे आसक्त और एक दूसरे की रक्षा के उपाय में तत्पर रहती थी।

एक दिन जब सुभगा उपपति के साथ घर के भीतर विद्यमान थी तभी कहीं बाहर से पति कटसरैया हाथ में लिए गृहद्वार पर आ गया।

तभी तुरन्त श्रृंङ्गारवती ने उस सुभगा को नंगीकर घर से बाहर निकाल दिया। पति ने 'यह क्या है?' पूछा तो श्रृंङ्गारवती ने अत्यन्त, आदर से कहा– देवी जी के उपवन से जो तुमने ये कटसरैया ग्रहण किये उसी के बाद से ही देवी जी से यह आविष्ट हो गयी, अतः जाकर यथा स्थान इसे रख आओ जिससे यह स्वस्थ्य हो जाय।

जब तक वह मूढ ऐसा करने बाहर गया तब तक उसने उपपति को घर से निकाल दिया।

कथा-11

(रम्भिका और ब्राह्मण की कथा)

दाभिल नामक गाँव में विलोचन नाम का मुखिया रहता था। उसकी पत्नी रम्भिका को परपुरूष बहुत प्रिय थे परन्तु उसके पति के भय से कोई उसका भोग नहीं करता था। तब वह जल के बहाने से घड़ा लेकर बावली पर गयी। वहाँ उसने एक सुन्दर ब्राह्मणपुत्र को देखकर रतिक्रीडा के लिए नेत्र संकेत से कहा और उसने कहा– तुम मेरे पीछे लगे मेरे घर चलो तथा मेरे पति को नमस्कार करना और सब मैं कर लूँगी।

घर में प्रविष्ट हो उसने पति से कहा– नाथ इसे पहचानो। यह मेरे मौसी का पुत्र है और मुझसे मिलने के लिए आया है मैंने इसे हृदय से लगाकर स्वजनों की कुशल वार्ता पूछी ।

उस ब्राह्मण ने 'एवम्' कहा। तब पति की आज्ञा पाकर उसे भोजन आदि उपचारों से प्रसन्न किया। पति भी तुष्ट हो बोला भद्रे ! अपने भाई की खूब सेवा करना। ऐसा कहकर सो गया।

तब रम्भिका ब्राह्मण की चारपाई पर बैठी तो उसने कहा– कि तुमने पति के आगे मुझे भाई बनाया है अतः स्वीकृत वचन का निर्वाह किया जाता है।

रम्भिका ने कहा– ऐसा मत कहो। रम्भिका द्वारा इस प्रकार कहा गया भी वह जब उसका संभोग करने को उद्यत नहीं हुआ तो वह चीत्कार करने लगी–अहो बचाओ–बचाओ मैं विनिष्ट हुई। उसके चीत्कार करने पर उसका पति बान्धवों के साथ दौडा।

तब उसने दूध सहित भात चारपाई के नीचे ढरका दिया और समीप आग जला दी। आये पति से बोली इसे हैजा हो गया है इसलिए मैंने फूत्कार किया। ऐसा देखकर मूर्ख पति चला गया और उसने मनमाना सुरत कया।

कथा-12
"कुलाल पत्नी शोभिका की कथा"

इस भूतल पर नलउडा ग्राम में एक अत्यन्त धनी कुम्हार था। उसकी पत्नी शोभिका अत्यन्त कुलटा और परपुरूष में आसक्त रहने वाली थी पति के बाहर जाने पर वह घर के भीतर उपपति के साथ रतिक्रीडा कर रही थी तभी उसका पति आ गया।

अब अपने को बचाने के लिए उसने उपपति से कहा तुम बबूल वृक्ष पर चढ़ जाओ। उसके वृक्ष पर जाने पर पति बोला–यह क्या है? वह बोली शत्रुओं से सताया गया यह अधोवस्त्र (धोती) भी त्याग कर बबूल पर चढ़ा हुआ है।

तब उसके पति ने आकर उसे वृक्ष से धीरे–धीरे उतार कर उसके घर भेज दिया और वह धूर्ता (शोभिका) ताली बजाकर हंसने लगी।

कथा-13
''वणिक् पत्नी राजिका की कथा''

नागपुर नामक स्थान पर एक वणिक् रहता था। उसकी पत्नी राजिका बड़ी सुन्दर और दुराचारिणी थी। बनिया उसे परपुरूष में आसक्त नहीं जानता था। एक दिन उसने मार्ग में जाते हुए, संकेत किये हुए उपपति को देखा। उसे देखकर 'घर से आज घी नहीं है? ऐसा कहकर घी के बहाने घर से निकलकर बाहर उपपति के साथ देर तक रही। पति घर में भूख से परेशान और क्रुद्ध था।

वह हाथ पैर और मुँह धूलिधूसर कर मुद्रा समेत धूलि लेकर घर आयी। क्रुद्ध रक्त नेत्र पति ने कहा– यह क्या?

दुःख की साँस छोड़ती तथा रोती हुई उसने धूल का ढेर दिखाकर कहा जिसके लिए तुम क्रुद्ध हो वह तुम्हारा द्रव्य इस धूल में गिर गया। इसे पछोर कर ले लो।

इस प्रकार कहने पर लज्जित उसने उसके अङ्गों को वास्त्राञ्चल से पोंछकर विविध लाड़–प्यार से शान्त किया।

कथा-14
''धनश्री और उसके वेणीदान की कथा''

शुक ने कहा– पद्मावती पुरी है। वहाँ धनपाल नामक वणिक् था। उसकी पत्नी धनश्री उसे प्राणों से भी प्रिय थी। (कुछ समय बीतने पर) एक दिन वह वणिक् रूपये–पैसे लेकर पत्नी से पूछकर विदेश चला गया। उसके चले जाने पर वह घर में मृत सी पड़ी रहती थी।

इस प्रकार समय बीतता रहा। बसन्तोत्सव के अवसर पर उसके मनोभाव को समझने वाली सखी ने कहा– भामिनि! रूप और यौवन व्यर्थ मत करो।

ऐसा कहने पर धनश्री बोली–मैं विलम्ब नहीं सह सकती। जो कुछ तुमसे हो सकता है, वह शीघ्र करो। तब उसने उसे परपुरूष से मिलाया। उस पुरूष ने उसे अपने मे आसक्त जानकर उसके सिर की वेणी काट ली। तत्काल पति विदेश से आ गया अपने को बचाने के लिए उसने पति से कहा नाथ! तब तक तुम घर के द्वार पर ठहर जाओ, जब तक मैं सब ठीक तैयार कर लूँ।

पति के ऐसा करने पर उस बीच में जाकर देवी का पूजन कर (देवी के) सामने वेणी रख दी और मैदे की विशेष प्रकार की रोटियों के सहित बाहर निकलकर पति को घर के भीतर देवी के सामने ले जाकर उसने कहा– नाथ! घर के इष्ट देवता की पूजा करो।

पूजन करते हुए उसने वेणी देखकर कहा– यह क्या है? उसने कहा– मैंने देवी से प्रार्थना की थी जब मेरा पति आयेगा तब हे स्वामिनी। मैं तुम्हारे आगे वेणी काटूँगी।

उस मुग्ध मूढ पति ने देवी को नमस्कार कर उस (धनश्री) का अत्यन्त सम्मान किया।

कथा- 15
(श्रिया देवी और सुबुद्धि की कथा)

शालिपुर नामक नगर में शालिग बनिया रहता था। उसकी पत्नी का नाम जयिका था और पुत्र का नाम गुणाकर था। उसकी पत्नी श्रिया देवी सुबुद्धि नामक दूसरे बनिये के साथ रमण करती थी। चारों तरफ बात फैल जाने पर भी उसका पति इस अफवाह पर विश्वास नहीं करता था।

एक दिन उस परपुरूष को सोते हुए उसके ससुर ने देखा और उसके पैर से नुपुर उतार लिया और उसे पता न चला। तब उसने उपपति को भेजकर पति को वहॉ लाकर उसके साथ, सोयी और निद्रा के बीच में पति को उठाकर कहा– तुम्हारे पिता ने हमारे पैर से नुपुर उतार लिया। उसने कहा प्रातः पिता से लेकर तुम्हें दे दूँगा। पिता ने कहा– परपुरूष के साथ सोयी देखकर मैंने नुपूर ले लिया था।

उस (श्रिया देवी) ने कहा– मैं तुम्हारे पुत्र के साथ सोयी थी यदि आपको विश्वास नहीं है तो गॉव में उत्तर की ओर यक्ष है जो कोई सच्चा होता है वही उसकी जाँघों की बीच से निकल पाता है।

ऐसा करने के लिए ससुर से स्वीकार कर लेने पर वह उपपति के घर जाकर बोली–मै प्रातः यक्ष की जॉघों के बीच से निकलूँगी तुम वहॉ पागल बनकर मेरा कण्ठ पकड़ लेना।

प्रातः यक्ष पूजा के लिए आती हुई उसके कण्ठ में पागल बने उपपति ने अपनी दोनों भुजाएँ डाल दीं।

तब पुनः स्नान कर यक्ष के पास आकर सब लोगों को सुनाकर कहा–हे भगवान यक्ष! मेरे पति तथा इस पागल के अतिरिक्त यदि और किसी पुरूष ने मेरा स्पर्श किया हो तो तुम्हारी जॉघों के बीच से मेरा निष्क्रमण न हो सके। ऐसा कहकर सबके सामने जाँघों के मध्य प्रवेश कर निकल गयी और लोगों के द्वारा सती मानकर सम्मानित की गयी।

कथा-16
"मुग्धिका की कथा"

विदिशा नामक नगरी में जनवल्लभ वणिक् रहता था। उसकी पत्नी मुग्धिका अत्यन्त चञ्चल और व्यभिचारिणी थी। जब उसने पति को कलंकित कर दिया तब पति ने विरादरी के लोगों से बताया कि वह परपुरूषगामिनी है।

जब बन्धुओं ने वाणिक् की पत्नी से पूछा तो उल्टा उसने पति को ही परस्त्रीगामिनी बताया और कहा कि यह मुझे मिथ्या कलंकित कर रहे हैं।

तब सभी ने मिलकर यह योजना बनायी कि इन दोनों में से जो भी आज से बाहर सायेगा, वही अपराधी होगा। इस तरह सहमति होने पर भी वह सोते पति को छोड़कर बाहर चली गयी। उसके जाने पर पति दरवाजा बन्द करके सो गया। जब वह रतिक्रीडा करके आयी और पति ने दरवाजा नहीं खोला तो वह कुएँ में एक भारी पत्थर फेककर दरवाजे के पास खडी रही। पति ने सोचा कि कुएॅ में गिर गयी होगी ऐसा समझकर द्वार खोलकर बाहर निकला तो वह तुरन्त अन्दर जाकर दरवाजा बन्द कर ली। तब पति भी बाहर खड़ा होकर 'हा प्रिये' ऐसा कहते हुए जोर–जोर से रोने लगा। तब पत्नी भी रहस्य खुल जाने के भय से बाहर निकलकर पति को अन्दर ले गयी और दोनों ने आपस में समझौता करते हुए इकरार किया कि आज से हम दोनों एक दूसरे पर दोषारोपण नहीं करेंगे।

कथा-17
"गुणाढ्य ब्राह्मण की कथा"

विशाला नगरी में यायजूक नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी पाहिनी सुरूप और अत्यन्त प्रिय थी। पिता ने अपने पुत्र को क्रमशः समस्त विद्यायें ग्रहण करायीं। कतिपय दिनों बाद वह माता–पिता को त्यागकर विदेश चल गया और गुणाढ्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने जयन्ती नगरी में बुद्धि से जीवकोपार्जन करने को सोचा और एक बैल का यव, काश आदि से पालन किया।

उस बैल को बन्धन युक्त कर वह बनजारा वेश धारण किये, मदना वेश्या की कुट्टिनी से बोला–कि माल लादे हुए हमारे बैल को जहाँ बांधने का स्थान मिलेगा वहीं मैं सो जाऊँगा।

इस प्रकार कहने पर बैल पर स्थित धन ग्रहण करने की इच्छा से उस कुटनी ने उसे ठहरा लिया। वह भी बैल को बाँधकर विलासिनी के पास प्रेमासक्त होकर रात मे वहीं रह गया और सुबह सबसे पहले उठकर सोने की जंजीर लेकर चला गया।

उसके जाने के बाद एक दासी उठी और बैल को न देखकर कुटनी से बोली–आर्ये! यह क्या ?

तब विलासिनी के पास से गया हुआ जानकर वह मौनधारण कर ली और एक दिन जुए में हारा गुणाढ्य वेश्या द्वारा पकडा गया।

तब उसने उपाय सोचा–'शम्बली–शम्बली' (कुटनी) ऐसा कहने लगा।

तब राजभय से उसने गुणाढ्य को छोड दिया। चलती हुई उस कुटनी के पीछे लगा गुणाढ्य 'शम्बली' यह शब्द कहता चला और एकान्त में उसे ले जाकर प्रसन्न कर हाथ से सोने का आभूषण निकालकर दिया।

कथा-18
''सर्षपचौर की कथा''

शुभस्थान नगर में दरिद्र बनिया रहता था। एक दिन उसके घर में चोर घुसा जब उसे कुछ नहीं मिला तो वह सरसों लेकर निकला और सिपाहियों ने उसे घेर लिया। गले में सरसों बाँधे हुए वह राजा के पास लाया गया और पूछे जाने पर कहता है– अहो सरसों में कुछ नहीं रह गया।

तब राजा ने सभा में बुलाकार कहा– तुम्हारी बात का अभिप्राय समझ में नही आ रहा है। तब उसने कहा–

बलि के वर्ष दिन पर लोग अपनी रक्षा के लिए हाथ में सरसों के दानें बाँधते हैं, वह आज से निश्चय ही (अप्रमाण) असत्य होगा।

क्योंकि मैं गले में इतनी सरसों बाँधे भी बन्दी हूँ। यह सुनकर राजा हँसते हुए उसे छोड़ दिया।

कथा-19
''सन्तिका और स्वच्छन्दा की कथा''

करहड नगर में गुणप्रिय नामक राजा था। वहीं पर सोढाक नाम का सेठ था। उसकी पत्नी सन्तिका अत्यन्त पतिव्रता थी। वहीं एक दूसरा बनिया भी था। उसकी भार्या स्वच्छन्दा व्यभिचारिणी थी। वह सोढाक को नित्य चाहती परन्तु वह उसकी इच्छा पूर्ति नहीं करता। एक दिन वह (सोढाक) मनोरथ नामक यक्ष को प्रणाम करने गया। तभी स्वच्छन्दा भी उसका अनुसरण करती हुई हावभावादि से उसे अनुकूल बनाकर उसके साथ रति क्रीडा की।

उन दोनों (सोढाक , स्वच्छन्दा) को पकडने के लिए राजपुरूष ने मन्दिर घेर लिया। सन्तिका ने पति की निर्दोषता को बचाने के लिए रात को जोर–जोर से मृदङ्ग बजवाती यक्ष मन्दिर के पास गयी और पहरेदारों से कहा–मैं आज दिन–भर यक्ष परायण थी, अतः यक्ष का दर्शन एकान्त में करके ही भोजन ग्रहण करूँगी कुछ धन लेकर मुझे अन्दर जाने दिया जाय।

उन लोगों ने वैसा ही किया। तब उसने स्वच्छन्दा को अपना वेष धारण कराकर बाहर निकाल दिया और स्वयं भीतर रह गयी। प्रातः सोढाक को अपनी पत्नी साहित देखकर पहरेदार अत्यन्त लज्जित हुए।

कथा-20
''केलिका की कथा''

साभ्रमती नदी के किनारे शङ्खपुर नगर में सूर नामक एक धनी किसान रहता था। उसकी पत्नी का नाम केलिका था जो अत्यन्त कुटिल तथा कुलटा थी। वह नदी के दूसरे तट पर बसे सिद्धपुर में रहने वाले ब्राह्मण के साथ भोग–विलास करती थी। जब पति को यह वृतान्त ज्ञात हुआ तो वह उसके चरित्र का पता लगाने के लिए वहाँ गया। लेकिन नदी के किनारे केलिका ने पति को देख लिया।

अतः उसने घड़े को जिसके सहारे वह नदी पार करती थी, पानी से भरकर पडोसिनी के घर के अन्दर देवी को सजाकर जल से स्नान कराकर पहले से ही संकेत द्वारा दिखाई गई दूती को लक्ष्य कर बोली—स्वामिनी! आप ही ने तो कहा था कि तुम सिद्धेश्वरी को स्नान नहीं कराओगी तो पाँच दिन के अन्दर तुम्हारे पति की मृत्यु हो जायेगी।

यह सुनकर पति प्रसन्न हुआ और अलक्षित ही चला गया।

कथा-21
''मन्दोदरी और उसके मयूर भक्षण की कथा''

प्रतिष्ठान नगर में हेमप्रभ नामक राजा और श्रुतशील मन्त्री रहता था यशोधरा नामक सेठ की पत्नी मोहिनी और उन दोनों की पुत्री मन्दोदरी थी। मन्दोदरी कान्तिपुर से आये श्रीवत्सनामक वण्कि् को दी गयी। मन्दोदरी प्रतिदिन कुटनी द्वारा मिलाये गये राजपुत्र का उपभोग करती थी तथा गर्भिणी होने पर उसने राजा के प्रिय मयूर को मरवा कर खा लिया। राजा मयूर के आने पर ही भोजन करता ऐसा नियम था। उस दिन भोजन वेला पर मयूर के न मिलने पर डुग्गी पिट जाने पर कुटनी ने बताया कि किसी गर्भवती ने दोहद के कारण उसे खा लिया है।

तब कुटनी मन्दोदरी के घर गयी और उसने सारा मयूर वृतान्त बता दिया। विश्वासघातिनी कुटनी ने सब कुछ जानकर मन्त्री को और मन्त्री ने राजा को बताया। राजा ने कहा वणिक् वधू को बिना देखे उस पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए।

तब कुटनी मन्त्री को सन्दूक में रखकर उस मन्दोदरी के घर छोड़ आयी और कुछ समय बाद उसके घर जाकर उससे बोली—मुग्धे तुमने बहुत अच्छा किया जो मयूर का भक्षण कर लिया।

उसने सारा वृतान्त वणिक् वधू से फिर से पूछा—जिससे कि पेटी में स्थित मन्त्री सभी बात को सुन सके।

ज्यों ही कुटनी ने हाथ से सन्दूक को पीटा त्यों ही वणिक् पुत्री मन्दोदरी ने वितर्क पर्वूक कहा—मात· जब तक मैंने ऐसा किया तब तक रात बीत चुकी थी और मैं जग गयी। इसके आगे स्वप्न मे और कुछ नहीं देखा। यदि कोई इस विषय में मेरा प्रमाण हो तो बताएँ।

ऐसा सुनकर मन्त्री सन्दूक का ढक्कन खोलकर बहार निकला और मन्दोदरी का सम्मान किया और उस कुटनी को निर्वासित कर दिया।

कथा-22
''माढुक की कथा''

दम्भिला गाँव में सोढाक नाम का किसान रहता था। उसकी पत्नी का नाम माढुका था। जब वह अपने पति के लिए प्रतिदिन खेत में भात लेकर जाती थी उसी बीच मार्ग में बाहर एक सूरपाल नामक मनुष्य उसका उपभोग करता था। एक दिन जब वह भात अलग रखकर उस सूरपाल के साथ स्थित थी तभी मूलदेव नामक धूर्त ने उस भात के भीतर ऊँट की शक्ल का मदिरा पात्र रख दिया। जब पति ने ऊँट के भीतर उष्ट्रिका देखा तो पूछा यह क्या है? तब उसने अत्यन्त चतुराई से कहा स्वामी! आज रात मैने स्वप्न में देखा कि एक ऊँटनी तुम्हें खा गयी। अतः विघ्न को दूर करने के लिए यह विपरीत किया। यह सनुकर अनुरक्त उसने उष्ट्रिका भी खा लिया।

कथा-23
''धूर्तमाया कुट्टिनी की कथा''

पद्मावती नगरी में सुदर्शन नाम का राजा था। उसकी पत्नी का नाम श्रृङ्गारसुन्दरी था। उसके साथ उस राजा के क्रीडा करते—करते ग्रीष्मकाल आ गया ऐसे ग्रीष्मकाल में चन्द्रनामक वणिक् अपनी पत्नी सहित घर की छत पर आरूढ़ हुआ। इस प्रकार सन्ध्याकाल में वह वणिक् उस प्रभावती के साथ क्रीडा किया करता था।

इसके पुत्र का नाम राम था। पिता ने उसे सम्पूर्ण विद्यायें सिरवायीं उसकी माता ने एक दिन चन्द्र से कहा एक ही पुत्र होने के कारण मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। चन्द्र ने कहा– तुम्हारा एक ही पुत्र प्रशसनीय है।

ऐसा कहकर धूर्तमाया कुटनी को बुलाकर कहा कि मैं तुझे सुवर्ण की सहस्र मुद्राएँ दूगाँ। मेरे पुत्र को स्त्री माया के वञ्चन में निपुण बना दो और कहा कि यदि मेरा पुत्र कहीं भी वेश्या के कपट से पराजित हुआ तो मैं दूनी सुवर्ण मुद्राएँ लूँगा। उसने एवमस्तु कहते हुए उसे वेश्याओं में उत्पन्न होने वाले भावों का अध्ययन कराया।

इस प्रकार समस्त वेश्या चरित सीख लेने के बाद उस कुटनी ने उस पुत्र को बनिये को सौंप दिया। पिता के कहने पर वह व्यापार के लिए सुवर्ण द्वीप गया और वहॉ कलावती वेश्या के साथ एक वर्ष रहा किन्तु वह वेश्या अत्यन्त चतुराई करने पर भी उससे धन न ले सकी तो उसने सारा हाल अपनी माता से बताया। माता बोली कि– प्रपञ्च से ही उसका धन लिया जा सकता है। अतः जब वह अपने देश को जाने लगे तो तुम उससे कहना मैं भी चलूँगी और यदि न ले जाए तो कुएँ में झम् से कूद जाना ऐसा करने से वह तुम्हें सब धन दे देगा। उसने कुटनी के कथानानुसार ही किया और करोड़ों की सम्पतित लेकर उसे निकाल दिया।

इस प्रकार धन तथा मान के विषय में पराभव के प्राप्त होने पर अपने देश में आकर पिता को पूरा वृतान्त बताया। तब पिता ने धूर्तमाया को बुलाकर कहा कि तुम्हारे द्वारा शिक्षा देने पर भी अपना सर्वस्व गॅवाकर आया हैं उसने कहा तुम फिर से नौका भराकर पुत्र समेत मुझे वहाँ भेजो। वहॉ पहुॅचकर अत्यन्त चालाकी से उस कुटनी ने वेश्या से अपना और उसका सारा धन लेकर राम के साथ नौका पर सवार होकर अपने घर पहुँचकर महोत्सव कराया।

कथा- 24
''सज्जनी और देवक की कथा''

चन्द्रपुर नगर में सूरपाल नामक धनी बढई रहता था। उसकी पत्नी सज्जनी परपुरूष में आसक्ति रखती थी। अपने घर में ही स्थित वह देवक नाम पुरूष से रति करती थी ऐसा लोगो से सुनकर बढई कपट से प्रातः ही घर से निकलकर शाम को गुप्त रूप से आकर पलंग के नीचे बैठ गया। जब उसकी पत्नी उपपति के साथ पलंग पर आरूढ हुई तो पति ने उसके बाल पकड़ लिए।

अतः अपनी ने अपने को बचाने के लिए उस उपपति का मुँह देखकर कहा–मेरे पति इस समय घर पर नहीं है। यद्यपि पति ने तुम्हारा धन लिया है तथापि क्षमा कीजिए। बढ़ई के आ जाने पर तुम दोनों को मिलाऊँगी।

कथा- 25
''श्वेताम्बर की कथा''

चन्द्रपुरी नगरी मे सिद्धसेन नामक बौद्ध संन्यासी लोगों द्वारा बहुत सम्मानित था किन्तु उसी नगर में एक दूसरा जैन साधु भी जो बहुत गुणवान था, आ गया उस गुणी ने सभी नगरवासियों यहाँ तक की बौद्ध भिक्षुओं को भी आपनी ओर आकर्षित कर दिया था। इसलिए वह बौद्ध लोगों द्वारा उस जैन सन्यासी को सम्मान किये जाने को न सहता हुआ स्वयं उसके निवास स्थान पर वेश्या भेजकर, यह वेश्या में आसक्त सुचरित्रवान नहीं है– इस प्रकार उसकी लोकनिन्दा की। उसे देखने के लिए लोगों को बुलाया और बोला–बौद्ध भिक्षु ही ब्रह्मचारी है, जैनसाधु का अच्छा आचरण नहीं है। लेकिन जैनसाधु भी चालाक था वह दीपक से वासगृह को जलाकर रात बीत जाने पर नंगा हो, वेश्या का हाथ पकड़े हुए बाहर निकला। तभी सर्वत्र यह लोकापवाद फैल गया कि यह तो बौद्ध भिक्षु है, जैन साधु नहीं।

कथा- 26
"रत्नादेवी की कथा"

शुक ने प्रभावती से कहा कि जलउद गॉव में क्षेमराज नामक शूर राजपुत्र था। उसकी पत्नी रत्नादेवी थी। उसी गॉव में देवसाख्य नामक ग्रामाध्यक्ष का धवल नामक पुत्र भी रहता था। वे दोनों (पिता–पुत्र) एक दूसरे को न जानते हुए रत्नादेवी के साथ रमण करते थे। एक दिन जब पिता–पुत्र उसके घर में थे तभी वहॉ राजपुत्र आ गया।

तब उस रत्नादेवी के द्वारा अत्यन्त चतुराई से संकेत किया गया ग्रामाध्यक्ष अॅगुली से धमकाता हुआ चला गया। उसके जाने से पति ने भय से अपनी पत्नी से कहा यह क्या है?

तब हॅसती हुई वह बोली–इसका पुत्र तुम्हारे घर में शरणागत् है। मैंने उसे वापस नहीं किया। इसलिए यह अप्रसन्न होकर जा रहा है। अतः तुम जाओ और उसके पुत्र को सौंपा दो। उसने वैसा ही किया।

कथा- 27
"मोहिनी और कुमुख की कथा"

शुक ने प्रभावती से कहा कि–शंखपुर नगर में आर्य नाम का वणिक् रहता था। उसकी पत्नी का नाम मोहिनी था। उसके बाहर जाने पर कुमुख धूर्त उसका उपभोग करता था। जब पति को यह बात ज्ञात हुई तो वह उसे बाहर जाने से रोककर उसके पास ही स्थित रहता था। तब मोहिनी ने धूर्त से कहा कि जब मैं रात में पति की खाट पर पति के पीछे सोई रहूँगी, तुम आकर मेरा उपभोग करना।

उसके वैसा करने पर पति ने उसे पकड़ लिया और अपनी पत्नी से कहा मैंने चोर पकड़ लिया है, जाओ दीप लाओ। तब पत्नी ने अत्यन्त चतुराई से कहा मैं बाहर जाने से डर रही हूँ। इसे मैं पकड़े रहूँगी जाओ तुम दीप ले आओ।

उसने वैसा ही किया। इसी बीच मोहिनी ने जार को छोडकर भीतर बँधे कुत्ते के पट्टे की जिह्वा को पकडकर उसी प्रकार सो गयी। हाथ में छडी और दीप लेकर आये पति ने पूछा—क्या यह कुत्ते की जिह्वा? यहॉ कैसे?

पत्नी ने कहा—वह भूखा है। इससे मुक्त की गयी चाटने से यह दुर्बल है।

इस प्रकार कथन प्रतिकथन से वह मोहिनी से पराजित हो गया और लज्जित होकर सो गया।

कथा- 28

''देविका और प्रभाकर ब्राह्मण की कथा''

शुक ने प्रभावती से कहा कि —कुहाड ग्राम मे जरसाख्य नाम का महामूर्ख गृहस्थ रहता था। उसकी पत्नी का नाम देविका पुँश्चली था। उसके साथ प्रभाकर नाम का विप्र गुप्त स्थान में रमण करता था। इस बात को लोगों के द्वारा सुनने के बाद वह स्वयं देखने के लिए गया। वृक्ष पर चढ़कर उसने वैसा ही देखा। देखकर पेड़ पर स्थित ही उसने कहा—धूर्ति के! बहुत दिनों के बाद आज पकड़ मिली हो।

तब उस गृहस्थ की पत्नी ने चतुराई से उस जार को भेज दिया और जब पति पेड से उतरा तो उसने उलाहना देते हुए कहा—स्वामी यह वृक्ष ही ऐसा है कि इस पर चढ़े व्यक्ति को मिथुन जोड़ा दिखाई पड़ता है।

तब पति ने कहा—तुम चढ़कर देखो।

उसने वैसा ही किया और वृक्ष पर चढ़कर कहा बहुत दिनों बाद अन्य नारी के साथ गमन करते हुए दिखाई पड़ रहे हो।

उस मूर्ख ने इस बात को सत्य समझा और उसे शान्त कर घर ले गया।

कथा- 29
"सुन्दरी और मोहन की कथा"

सीहुली ग्राम मे महाधन नाम का वणिक् रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुन्दरी था। मोहन नाम का उपपति नित्य घर आकर उसका उपभोग करता था। एक दिन जब वह ऐसी स्थिति में भी तभी उसका पति आ गया।

वह पति को घर की ओर आते देख, उपपति को नंगे ही छींके पर आरूढ कर, बाल बिखेरे, घर से निकलकर, दूर स्थित हो पति से बोली हमारे घर में छीके पर चढा हुआ एक नग्न भूत है। मन्त्रवेत्ताओं को बुलाने जाओ। उसके इस तरह कहने पर वह बुलाने चला गया। तब उसी बीच मे हाथ में जलता हुआ लुकाठा लेकर उपपति को बाहर निकाल दिया। पति के आने पर वह बोली–लुकाठा देखकर भूत भाग गया।

कथा- 30
"मूलदेव और पिशाच की कथा"

भूतवास श्मशान पर कराल और उत्ताल नाम के दो पिशाच रहते थे। उनकी क्रमशः धूमप्रभा और मेघप्रभा पत्नियाँ थी। एक दिन दोनों पिशाचों में दोनों पत्नियों में कौन सुन्दर है– इस विषय को लेकर काफी विवाद छिड़ गया। एक समय सपत्नीक उन दोनों पिशाचों को मूलदेव दिखाई पडा। उन दोनों ने मूलदेव को कसकर पकड लिया और कहा कि– इन दोनों में कौन रमणीय है? झूठ बोलोगे तो हम मार डालेंगे। उनकी पत्नियाँ कुरूप, भीषण पिशाचिनी थीं।

अतः उसने यथार्थ न कहकर यह कहा कि जो जिसे प्रिय है उसको वही रमणीय है, दूसरी नहीं। इस तरह धूर्तराज मूलदेव के इस प्रकार कहने पर दोनों पिशाचों ने उसे छोड़ दिया।

कथा- 30
"शशक और पिङ्गलनाम सिंह की कथा"

मधुर नामक वन में पिङ्गल नाम का सिह प्रतिदिन बहुत से जीवों का वध करता था। इसलिए सब पशुओ ने आपस में विचार करके प्रतिदिन एक–एक पशु भेजने की व्यवस्था की और उसे सब पशुओं का वध करने से मना कर दिया। एक दिन खरगोश की बारी आई और वह सब पशुओं के कहने पर भी नहीं गया और कहा कि आज से उसके पास कोई पशु नहीं जायेगा, इस तरह काफी समय बीत जाने के बाद एक दिन दोपहर के समय ही धीरे–धीरे वह सिंह के पास चला। उसके पहुँचते ही सिह ने उसे धर दबोचा।

अतः शशक अपने बचाव के लिए सिंह से बोला स्वामी मैं चार खरगोशों के साथ आता हुआ, मार्ग में तुम्हारे शत्रु द्वारा पकड़ लिया गया, इसी कारण देर हो गई।

सिंह ने कहा– शत्रु कहॉ है?

तब उस धूर्त खरगोश ने एक वाटिका में ले जाकर उसी का प्रतिबिम्ब कुएँ में दिखाया। मूर्ख सिंह क्रुद्ध हो जल में प्रतिबिम्ब देखकर कुएँ में 'झम्' से कूद पड़ा और मर गया।

कथा- 32
"राजिनी की कथा"

शान्तिपुर नगर में माधव सेठ रहता था। उसकी पत्नी मोहिनी और पुत्र सोहड़ थे। सोहड़ की पत्नी राजिनी बड़ी रूपवती चतुर एवं परपुरूषगामिनी थी। एक बार सास ने उसे एक द्रम्म[1] देकर कहा–जाओ बाजार से गेहूँ ले आओ।

---

1 द्रम्म–सोलह पण की विशिष्ट मुद्रा,
शुकसप्तति पृष्ठस० 149

जब वह बाजार गयी तो वही पर गेहूँ खरीदते समय उसने उपपति को देखा और संकेत द्वारा अपने पास बुलाया और गेहूँ की गठरी बाजार में छोड़कर उसके साथ चली गयी। मौका पाकर बनिये ने गठरी से गेहूँ निकालकर उसमें धूल भर दिया और बहुत देर से आने के कारण वह गठरी बिना देखे ही घर लेकर आयी। जब सास ने गठरी खोल कर देखा तो उसमें धूल, तब सास ने बहू से पूछा– यह क्या? तब उसने बताया कि मात· मेरे हाथ से बाजार के कुछ आगे ही द्रम्म पृथ्वी पर गिर पडे थे। इसलिए मैं धूल ही उठा लायी तब वह धूल में द्रम्म न देखकर बहुत दुःखी हुई।

कथा– 33
"मालिनी और रम्भिका की कथा"

शंङ्खपुर नगर में शकर नामक सम्पतिशाली माली था। उसकी पत्नी रम्भिका को रति अत्यन्त प्रिय थी और वह अनेक पुरूषों से सम्बन्ध रखती थी। एक दिन शंकर के घर में श्राद्ध दिवस था, उस दिन उसकी पत्नी बाजार में फूल बेचने गयी वही पर ग्राम मुख्य, वणिक्पुत्र, अंकरक्षक तथा सेनाध्यक्ष चार उपपतियों को पृथक–पृथक अपने घर आने के लिए आमन्त्रित किया। वे चारों एक दूसरे के अमन्त्रण का ज्ञान नहीं रखते थे।

दूसरे दिन जब माली फुलवारी में चला गया, तभी वणिक् पुत्र उसके घर स्नान, भोजन, रमण के उद्देश्य से आया। इधर वणिक् आधा ही स्नान किया था कि दरवाजे पर ग्राममुख्य आता दिखाई पड़ा। उसको देखकर भययुक्त वणिक् उसी स्थिति में बाँस के एक झावे में बैठा दिया गया। ग्राममुख्य भी आधा ही नहा चुका था कि बाहर अंकरक्षक आ गया। उसे देखकर उसे झावे में बैठा दिया गया और कहा गया कि नीचे सर्पिणी ने बच्चे दिये हैं। अंगरक्षक भी आधा स्नान ही कर चुका था कि बलाध्यक्ष को देखकर उसे बर्तनों के समूह के बीच स्थापित कर दिया गया। माली को आता देख बलाधिप भी वहीं स्थापित किया गया। तब माली और अन्य बहुत से लोगों

को उस श्राद्ध में यथेष्ट भोजन कराया। इसके बाद अलक्षित उन चारों को पृथक–पृथक परम मधुर स्वादिष्ट भोजन दिया गया। भोजन करते बनिये ने फू–फू ध्वनि किया। तब ऊपर स्थित ग्राममुख्य ने सर्पिणी की शंङ्का से भय से पेशाब कर दिया। बनिये ने घृत समझकर बर्तन को ऊपर उछाला और वह बर्तन ऊपर स्थित ग्राममुख्य के मुँह में लगा।

उससे वह शंङ्कित हो 'लग्नम्–लग्नम् कहता हुआ 'झम्' से कूद कर निकल गया। दूसरे भी 'लग्नम' इस शब्द से भय विह्वल हो बाहर निकले, जिससे शंकर तथा अन्य लोग विस्मयपूर्वक बहुत हॅसे। तब उसने पत्नी से पूछा यह क्या? तब पत्नी ने कहा आपने श्राद्ध–श्रृद्धा से नही किया इसलिए तुम्हारे पितर भूख से पीड़ित बाहर निकल आये। तब उसने फिर से श्राद्ध किया और इधर रम्भिका के कहने से वे लोग निकल गये।

कथा- 34
"शम्भु ब्राह्मण की पारडी (साड़ी) की कथा"

प्राचीन काल में एक नगर मे शम्भु नामक एक जुआरी विप्र रहता था। एक दिन नाना देश में घूमने वाले उस विप्र ने मार्ग में जाते हुए, खेती की रखवाली करती एक सुन्दर बालिका को देखकर, ताम्बूल देते हुए कहा कि–तुम यह साड़ी ग्रहण करो और मेरे साथ सम्भोग करो।

उसने बडे सुख से वैसा किया। जब रति कार्य पूरा हो गया तब वह विप्र साडी वापस माँगने लगा।

उसके माँगने पर कुछ न बोलते हुए वह घर की ओर चल पड़ी और वह ब्राह्मण भी अनाज की चार बालियाँ लेकर उसके पीछे चल पड़ा। गाँव में पहुँचकर विप्र ने कहा गाँव वालो देखो अनाज की चार बालियों के कारण इसने मेरा वस्त्र छीन लिया है।

तब ग्रामवासियों ने इस बात को सच मानकर उसका वस्त्र दिला दिया और वह लज्जा से कुछ न बोल सकी।

कथा- 35
"शम्बक वणिक् की कथा"

प्राचीन काल मे एक गॉव में शम्बक नामक बनिया तिल खरीदता था वह सरग्राम में बर्तन बेचने वाले बनियॉ के घर गया किन्तु वह घर पर नहीं था। इसी बीच उसकी पत्नी और शम्बक के बीच परस्पर प्रीति हो गयी। उसने उसे ॲगूठी देकर उसका उपभोग किया। रतिक्रिया के बाद वह अपनी अँगूठी वापस मांग रहा था किन्तु ॲगूठी न पाने पर वह बाजार में तिल विक्रेता व्यापरी के पास जाकर बोला–सौ प्रस्थ तिल मुझे दो जिसका मैं बयाना दे चुका हूँ।

यह सुनकर वह बोला कौन सा तिल? तुम कौन हो? कैसा बयाना? उसने कहा–प्रस्थ का परिभाण दूना बढ़ा देने के निमित्त तुम्हारी स्त्री बयाना में अंगूठी ले चुकी है।

इस प्रकार ऐसा सुनने पर रूष्ट होकर पत्नी के पास अपने पुत्र को भेजकर कहलवाया कि तुम्हारे इस प्रकार के व्यवहार से घर नष्ट हो जायेगा।

तब पुत्र ने ॲगूठी लेकर तिल बिक्रेता के हवाले कर दिया, अर्थात वह धन जैसे आया था वैसे ही चला गया।

कथा- 36
"नायिनी की रावडी की कथा"

सरड नामक गाँव में शूरपाल ग्रामाध्यक्ष रहता था। उसकी पत्नी नायिनी अपने पति से नित्य रेशमी चोली माँगती। तब उसके पति ने कहा हम लोग तो सूती वस्त्र ही पहनते हैं रेशमी सूत की बात भी हमारे घर में कोई नहीं जानता।

एक दिन ग्रामसभा मे उसने पति से कहा—मालिक घर आओ, रावडी (पिष्ट द्रव विशेष) खाओ।

उसने घर आकर पत्नी से कहा—भद्रे। सभा में तुमने निन्दित लज्जाकारक तथा मुझे अप्रिय वचन क्यों कहा?

उसने कहा तुमने मेरा प्रिय क्यों नहीं किया?

ग्रामाध्यक्ष ने कहा—तुम्हे आज चोली दूँगा। अपना वाक्य असत्य कर दो।

जब ग्रामाध्यक्ष ने उसे वस्त्र दे दिया तब उसने ससद सहित घर आये सदस्यों को भव्यरीति से भोजन कराया। तब गॉव के लोग कहने लगे शूरपाल समृद्धिशाली है। उसकी भार्या केवल अविनयाभाव तथा विनम्रता भाव प्रकट करने के लिये ही ऐसा कहती थी। इस प्रकार उसने पूर्वोक्त वचन को वृथा कर दिया।

कथा- 37
"लाङ्गुली (हलवाहा) और सुभगा की कथा"

सङ्गम नामक गॉव मे शूर नाम का गृहपति रहता था। पूर्णपाल नाम का उसका हलवाहा था। वह घर में खलिहान में सब जगह उस शूरपति का विश्वास पात्र था। खेत में स्थित उस हलवाहे को शूरपति की लड़की सुभगा नित्य भोजन ले जाती थी और उसके साथ निःशङ्क हो खेत के पास की गुफा में रतिक्रीडा करती थी। इस वृतान्त को अनुचित मानकर अन्य किसानों ने शूरपति से कहा।

दूसरे दिन इस सम्बन्ध को प्रत्यक्ष देखने के लिए वह शूर खेत की गुफा की सीमा पर छिपकर बैठा और उन दोनों के सम्बन्ध को देखा। ज्यों ही हलवाहा उपभोग कर उठा त्यों ही उसने शूरपति को देख लिया और अपने को बचाने के लिए कहा— मेरे कर्मफल को धिक्कार है जो मैं हल जोतता हूँ और यह ग्रन्थिरोग से पीड़ित है। मुझे एक तो नित्य हल चलाना पड़ता है दूसरे इसका उदरमर्दन कर ग्रन्थिरोग की

पीड़ा भी दूर करनी पडती है, हलवाहे का यह वचन सुनकर, ''यह निर्दोष है' अत. लोगो का कथन मिथ्या मानकर शूरपति लज्जित हो घर गया।

कथा- 38
"प्रियंवद विप्र और खटिया के पावे की कथा"

देवि! प्राचीनकाल में प्रियंवद नामक पथिक विप्र था। एक बार मार्ग में जाते हुये, सुदर्शन गॉव मे किसी बनिये के घर पहुँचा। उसकी पत्नी पुँश्चली व्यभिचारिणी थी। रात में उस ब्राह्मण ने कामातुर हो उससे रति याञ्चा की और बनिये के बाजार जाने पर ॲगूठी देकर उसके साथ रतिक्रीडा की। प्रात. उसने ॲगूठी माँगी किन्तु उसने नहीं दिया।

जब मॉगने पर भी उसने नहीं दिया तब वह ब्राह्मण चारपाई का एक पाया लेकर बनिये के पास गया और पाया दिखाकार रोने लगा।

उसने कहा इस पाया के टूट जाने पर तुम्हारी स्त्री ने मेरी अंगूठी ले ली। वह बनियॉ उसके कथन को सुनकर भार्या से बोला–ऐसा प्रमाद करने पर हमारे घर कोई पथिक नहीं आयेगा।

ऐसा निष्ठुर वचन सुनकर भूमि के गड्ढे से अँगूठी निकालकर पथिक के हवाले कर दिया और वह अपने अभीष्ट स्थान को चला गया।

कथा- 39
"भूधर वणिक् और उसकी तराजू की कथा"

कुण्डिन नगर में भूधर नाम का एक पथिक पुण्यनाश होने से धनहीन हो गया था। लोगों ने उसे त्याग दिया।

जब उसके पास तुलामात्र धन रह गया, तब वह दूसरे बनियाँ के घर तुला रखकर विदेश चला गया। वहाॅ धन कमाकर अपने नगर को आकर उस बनिये से तराजू मॉगी। बनिये से तराजू नहीं मिली। तराजू के लोभी उस मूर्ख बनिये ने उत्तर दिया कि तुम्हारी तराजू चूहे खा गये। ऐसा सुनकर वह चुप हो गया।

एक दिन वह भूधर उसके घर भोजन के लिए गया और उसके खेलते बालक को देखकर गुप्तरीति से अपने घर ले आया। बालक का पिता कुटुम्ब समेत दुःखी होकर रोने लगा। तब किसी पडोसी ने उसे बताया कि तुम्हारे पुत्र को भूधर ले गया है।

पुत्र मॉगने पर भूधर ने कहा! मित्र! तुम्हारा पुत्र मेरे साथ नदी के तट पर स्नानार्थ गया, वहाँ बाजपक्षी ने उसका अपहरण कर लिया।

यह सुनकर बनियाँ राजा के पास गया और पुत्र हरे जाने का मामला बताया। भूधर भी वहॉ गया।

तब राजा के सामने मन्त्री ने जब भूधर से पूछा तो उसने कहा देव! जहॉ लौहनिर्मित तराजू चूहे खा सकते हैं, वहॉ बाजपक्षी हाथी को हर सकता है, फिर एक बालक के हरे जाने में क्या आश्चर्य है?

यह वचन सुनकर मन्त्री ने कहा– जब यह धूर्त तुम्हारी तराजू दे तो पुत्र भी देना अन्यथा नहीं।

उसने पुत्र दे दिया। तुलाग्राही ने दण्डित हो तराजू दिया।

कथा- 40

"सुबुद्धि और कुबुद्धि की कथा"

नगर नामक नगर में सुबुद्धि और कुबुद्धि दो मित्र प्रसिद्ध थे। एक बार सुबुद्धि परदेश गया। कुबुद्धि ने मित्र की स्त्री को प्राप्त कर उससे सम्बन्ध स्थापित किया। जब सुबुद्धि धनार्जन कर विदेश से लौटा तब कुबुद्धि सुबुद्धि से कपटपूर्ण स्नेह दिखाने लगा। सुबुद्धि ने भी उसका सम्मान किया। कुबुद्धि ने उससे कहा—आपने कहीं कोई आश्चर्य देखा?

तब उसने कहा–मनोरम नामक गॉव में सरस्वती नदी के किनारे कुएँ में बिना समय के फला हुआ, तैरता हुआ, आम का फल मैंने देखा।

सुबुद्धि ने कहा–यदि यह बात सत्य है तो हमारे घर दोनों हाथों से जो कुछ तुम ग्रहण कर सको ग्रहण करो और मिथ्या होने पर तुम्हारे घर से मैं ग्रहण करूँ।

ऐसी शर्त लग जाने पर कुबुद्धि ने रात में कुएँ से उस फल को निकाल लिया जिस कारण से सुबुद्धि हार गया और कुबुद्धि ने उसकी भार्या के ग्रहण की कामना से शर्त पूरी करने को कहने लगा।

सुबुद्धि ने उस दुष्ट के दुर्विचार को जानकर अपने घर की सकल वस्तुओं तथा अपनी पत्नी को छत पर स्थापित कर सीढ़ी हटा दी और कुबुद्धि से कहा जो तुम्हें पसंद हो वह हमारे घर से ले लो।

उसने (कुबुद्धि) उसकी पत्नी को ग्रहण करने के लिए दोनों हाथों से सीढ़ी उठाई तभी सुबुद्धि ने कहा– मैंने पहले ही कह दिया है कि दोनों हाथों से जिसे तुम ग्रहण करोगे, वही तुम्हारा है, दूसरा नहीं। अतः वह लज्जित होकर बाहर निकल गया और लोगों से निन्दित हुआ।

कथा- 41
"राजपुत्री का रोग और ब्राह्मण की मन्त्र साधना की कथा"

पञ्चपुर नगर में शत्रुमर्दन नाम का राजा था अपनी पुत्री मदनरेखा के गले की ग्रन्थि को ठीक कराने के लिए राजा ने डुग्गी पिटा दी कि जो मेरी कन्या को निरोग कर देगा उसे मैं दारिद्रय रहित कर दूँगा। किसी दूसरे गाँव से आयी ब्राह्मणी ने ऐसा सुनकर कहा कि– मेरा पति मान्त्रिक इस राजकन्या को निरोग करेगा।

अतः मन्त्रादि न जानने पर भी वह मान्त्रिक धनालोभ के कारण अनुष्ठान की सामग्री और आचार्य के बैठने का आसन आदि ठीक कर अनेक हास्यपूर्ण मन्त्रोच्चारण करने लगा और मन्त्रों के उच्चारण से राजपुत्री हँस पड़ी। अधिक हँसने से उसकी

गले की गॉठ फूट गई। उसके फूट जाने पर राजपुत्री को आराम हो गया और राजा से धनराशि पाकर कृतार्थ होकर ब्राह्मण अपने घर चला गया।

कथा- 42
"व्याघ्रमारी और सिंह की कथा"

देउल ग्राम में राजसिंह नाम का राजपूत था। उसकी पत्नी कलहप्रिया अपने पति से झगड़ा करके अपने दोनों पुत्रों को साथ लेकर पिता के घर चली गयी। क्रोधवश वह अनेक नगरो तथा वनो को लॉघती हुई मलयगिरि के समीप महावन में पहुँची।

वहॉ पर बाघ को अपनी ओर आता देखकर निर्भयतापूर्वक उसने दोनों पुत्रो को तमाचा मार कर कहा– तुम दोनों एक अकेले बाघ को खाने के लिए क्यों लड़ाई कर रहे हो? इस एक ही को पहिले बॉट कर खा लो। इसके बाद जब दूसरा दिखाई पड़ेगा तब खाना।

ऐसा सुनकर सिंह ने उसे बाघ मारने वाली स्त्री समझकर भय से आकुलचित्त होकर भाग गया।

कथा- 43
"व्याघ्रमारी और जम्बुक की कथा"

वन में भयातुर उस बाघ को भगा हुआ देखकर पशुओं में धूर्त श्रृगाल ने कहा–कि भय से बाघ भगा हुआ है।

बाघ ने श्रृगाल से कहा कि तुम भी किसी गुप्त स्थान को चले जाओ, क्योंकि जिस व्याघ्रमारी को शास्त्र मे सुनते है वही मुझे मारने जा रही थी कि मैं जान बचाकर शीघ्र ही उसके आगे से भागा।

जम्बुक ने व्याघ्र से कहा स्वामिन्! वह धूर्त स्त्री जहाँ है वहाँ चला जाय, यदि वहाँ चलने पर तुम्हारे सामने भी वह देखे तो आप अपनी शर्त के अनुसार मेरा वध कर दें।

तब उस व्याघ्रमारी (राजपुत्र की पत्नी) ने सोचा कि धूर्त श्रृगाल ही इसे यहाँ लाया है, अत· उसी श्रृगाल को फटकारती और अंगुली से भय दिखाती हुई बोली–

रे धूर्त श्रृगाल! पहिले तो तूने तीन बाघ दिये थे और आज एक ही बाघ विश्वस्त कर, प्रस्तुत करके क्यो जा रहा है।

ऐसा कहकर भयंकर व्याघ्रमारी वेग से दौडी और इधर बाघ गले मे श्रृगाल बांधे सहसा भाग गया।

कथा- 44
"जम्बुक की मुक्ति की कथा"

व्याघ्रमारी के भय से अन्य प्रदेश में जाने का इच्छुक बाघ, सियार को गले मे बॉधकर लटकाये लिये जा रहा है जिससे सियार की पीठ और पैर बुरी तरह रगड खाकर छिल उठे तथा रूधिर बहने लगा तब भी वह अपने को छुड़ाने की कामना से पीड़ित होते हुए भी बडे जोर से हँसने लगा।

बाघ ने कहा–तू क्यों हॅसा?

वह बोला–देव! मैंने उस व्याघ्रमारी को धूर्त समझा था तुम्हारी कृपा से दूर देश पहुँचकर जीवित बच गया। किन्तु हमारे गिर रुधिर बिन्दुओं से चिन्हित् मार्ग का अनुसरण करती वह पीछे–पीछे आ रही हो तो कैसे जीवित बचेंगे।

इसके बाद उस वचन को सुनकर व्याघ्र सियार को छोड़ सहसा भाग खड़ा हुआ। सियार भी सुख से स्थित हुआ।

कथा- 45
"विष्णु ब्राह्मण और रतिप्रिया गणिका की कथा"

विलासपुर नामक नगर में अरिन्दम नाम का राजा था। उसी गाँव में विष्णु नामक एक रति लोलुप ब्राह्मण जो पत्नी विहीन रति कर्म में सब स्त्रियों से पराजित न होने वाला प्रसिद्ध था। उसी गाँव में रतिप्रिया नाम की गणिका थी। उसने सोलह द्रम्म

लेकर उसे अपने घर बुलाया। अन्य कार्यों से निवृत्त रति कर्म में मन दिये उस ब्राह्मण ने उसे जीतने के लिए रति आरम्भ की। द्रव्य के कारण उसे हराने के लिए उस वेश्या ने दो पहर तक उस रति लोलुप ब्राह्मण को सहा, किन्तु आधीरात को नीचे उतर कर उसने कुटनी से निवेदन किया और कहा कि इसका धन इसे वापस कर दो।

कुटनी ने कहा–जब मैं पीपल पर चढकर दो सूपों से पंख के फड़फड़ाने की ध्वनि करती हुई मुर्गे की बोली बोलूँ तब 'प्रभात हो गया' यह कहकर उसे निकाल देना। गणिका ने वैसा ही किया।

जब ब्राह्मण ने कुक्कुट की ध्वनि वाले स्थान को देखा तो दो सूप सहित उसे कुटनी दिखायी दी। उसने उसे ढेलों से आहत कर भूमि पर गिरा दिया। स्त्रियों ने उस कुटनी को बहुत धिक्कारा। वह ब्राह्मण शुल्क रूप में गृहीत धन का दूना धन लेकर नगर के बीच गणिका को निन्दित करके अपने घर गया।

कथा- 46
"करगरा और करगरा नाथ की कथा"

वत्सोम नामक नगर में एक दरिद्र ब्राह्मण था। उसकी पत्नी करगरा नाम के अनुसार गुणी, सब जीवों को इतना उद्विग्न करने वाली थी कि उसके गृहद्वार के वृक्ष पर रहने वाला भूत और ब्राह्मण उसके भय से वन को चले गये। भूत ने डरे हुए ब्राह्मण से कहा कि– हे अतिथि! तुम मुझसे भयभीत न हो, हे द्विज! मदन नामक भूपति की राजधानी मृगावती जाकर मैं उसकी पुत्री मृगलोचना को पकड़ लूँगा। तुम्हारे आने पर तुम्हारे दर्शन मात्र से ही मैं उसे छोड़ दूँगा।

तब भूत के न छोड़ने पर ब्राह्मण ने कहा– मैं करगरा का स्वामी, विश्वास कर यहाँ आकर स्थित हुआ, हे धूर्त भूत। तू अपने वचन का पालन कर। देव! क्या मुझसे छल करना तुझे उचित है?

तब भूत छोड़कर चला गया। यह भूत से मुक्त हो गयी ऐसा कह कर राजा ने ब्राह्मण को कन्या और आधा राज्य दे दिया। ब्राह्मण भी पूर्णमनोरथ होकर (अपने घर) गया।

कथा- 47
"करगरानाथ की कथा"

करगरा का पति राजकन्या के साथ राजलक्ष्मी का उपभोग करने लगा। इसी समय भूत ने 'कर्णावती' नगर पहुँचकर वहाँ के राजा की भार्या सुलोचना, जो मृगावती नगर के राजा मदन की बुआ थी, को पकड़ लिया। शत्रुघ्न राजा की भार्या सुलोचना ने अपनी पीहर के केशव मान्त्रिक को बुलाया। अनिच्छुक केशव को विनय पूर्वक लाने के लिए राजा मदन ने अपने दूतों को भेजा। तब वह करगरापति भार्या के अनुरोध पर गया। वहाँ पहुँचने पर शत्रुघ्न राजा से सम्मानित हो सुलोचना के महल गया। भूत ने कठोर वाक्यों में ब्राह्मण से कहा– मैंने अपना वचन निभाया अब तुम अपनी रक्षा करो। तुम मन्त्र–तन्त्र कुछ नहीं जानते।

ब्राह्मण ने भूत से कहा मैं करगरा पति हूँ, करगरा भी यहाँ आयी है। यह सुनकर भूत चला गया। सुलोचना के स्वस्थ होने पर ब्राह्मण मृगावती नगर को चला गया।

कथा- 48
"मन्त्री शकटाल व दो घोड़ियों की कथा"

पाटलिपुर नगर में नन्द नाम का चक्रवर्ती राजा था, शकटाल उसक मुख्य सचिव था। उसने राजा को धर्म का विनाश तथा पृथिवी को द्रव्यहीन करने से रोका जिसके कारण उस मूर्ख राजा ने उस मन्त्री को पुत्रों समेत अन्धकूप में डलवा दिया।

तब बंगाल के राजा ने, शकटाल की मृत्यु हुई या नहीं इसका पता लगाने के लिए अपने सेवकों को दो घोड़ियाँ देकर नन्द के पास भेजा और उन्हें आदेश दिया

कि इन दोनो मे कौन माता है और कौन पुत्री। इसका पता नन्द के यहाँ से कराके आओ। जब कोई भी नन्द के राज्य में घोडियों के विषय मे निर्णय न कर सका तब राजा ने नौकर से कहा–शकटाल के वंश का कुएँ के अन्दर कोई बचा है या नहीं।

उसने कहा– कोई तो अवश्य बचा है क्योकि कुएँ के अन्दर का कोई मनुष्य पूर्वोदिष्ट भात ग्रहण करता है।

तब उसे कुएँ से निकलवाकर राजा ने शकटाल से कहा इन दोनों में माता और पुत्री कौन है इस सन्देह को दूर करो।

तब मन्त्री ने दोनों घोडियों पर काठी रखवाकर विस्तृत मैदान में खूब दौड़ा कर, उनके थक जाने पर काठी उतरवा कर उन्हें छोड़ दिया। उसके बाद माता पुत्री को जीभ से चाटने लगी और पुत्री उसके प्रति अतिवत्सला–स्नेह युक्त हो गयी। तब मन्त्री ने माता और पुत्री का भेद (कौन माता है, कौन पुत्री) राजा के सामने बता दिया जिसके कारण मन्त्री को बहुत सा धन और प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

कथा- 49
"मन्त्री शकटाल और छड़ी की कथा"

शुक ने प्रभावती से कहा कि– जिस प्रकार शकटाल ने दुबारा चातुर्यपूर्ण काम किय था, वैसे ही संकट में चातुर्यपूर्ण उत्तर देना जानती हो तो जाओ। शुक ने यह कथा सुनाते हुए कहा–

बङ्गाल के राजा ने सुवर्ण हीरकों से जड़ी अत्यन्त गोल आकार वाली छड़ी अपने सेवकों को देकर कहा कि–नन्द के राज्य में जाकर इस छड़ी का आदि और अन्त भाग जानकर आओ। इस आदेश से नन्द के पास आकर छड़ी उसके आगे रखकर उसका आदि और अन्त उन लोगों से पूछा। उनका प्रश्न सनुकर मुख्य–मुख्य कलावेत्ता, बनियों ने उसे तौला, अन्य पण्डितों ने उसे देखा, किन्तु कोई उसका आदि और अन्त भाग नहीं बता सका।

तब राजा ने शकटाल को आदेश दिया कि तुम इसका आदि और अन्त भाग बताओ। उस बुद्धिमान मन्त्री ने छडी को जल मे डाल दिया और अन्तभाग जान लिया क्योकि जो मूल–भाग था वह थोडा सा जल मे डूब गया। उत्तर सुनकर उन सेवकों ने जाकर अपने राजा से बताया।

कथा- 50
"धर्मबुद्धि और दुष्टबुद्धि की कथा"

जाङ्गल नामक गॉव में धर्मबुद्धि और पापबुद्धि दो मित्र थे जो धन की आशा से परदेश गये। वहाँ से प्रचुर धन अर्जन कर जब वे लौटे तो कुछ धन पीपल के पेड़ के नीचे गाडकर शेष धन लेकर अपने–अपने घर चले गये। उस दुष्टबुद्धि ने खोदकर उस धन को लेकर अपने घर ला रखा। कुछ समय बाद दोनों मिले और पीपल के नीचे स्थित द्रव्य को लेने गये। जब देखा तो वहाँ धन नही था। धर्मबुद्धि ने यह सारा वृतान्त मन्त्री से बताया। मन्त्री द्वारा बलपूर्वक पूछे जाने पर उसने (कुबुद्धि) सिर्फ इतना बताया कि मैंने सहस्र पण छोड़ दिया था, इसके लिए शपथ दिलाऊँगा।

धर्मबुद्धि ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया तो मन्त्री ने दोनों की जमानत लेकर छोड दिया और वे अपने–अपने घर चले गये। तब दुष्टबुद्धि ने यह सारा वृतान्त अपने पिता को बताकर उस वृक्ष के कोटर में बिठा दिया। प्रातः दोनों वादी, मन्त्री और कौतूकाकृष्ट लोग उस पीपल के पास गये। स्नान किये दुष्टबुद्धि ने हाथ जोड़कर सत्य–शपथ कर कहा हे वृक्षोत्तम्! सच–सच कहना–यदि मैंने धन चुराया हो तो हॉ बोलना, यदि नहीं चुराया हो तो नहीं बोलना। ऐसा सुनकर सबके सामने उसके पिता ने कहा–इसने नहीं चुराया। तब धर्मबुद्धि ने उसके पिता का शब्द जानकर कोटर में आग लगा दी। चिल्लाते, अधजले उसके पिता को कोटर से गिरा देखकर मन्त्री ने दुष्टबुद्धि को दण्डित कर धर्मबुद्धि को सुखी किया।

कथा- 51
"ब्राह्मव गाङ्गिल की सेना की कथा"

चमत्कार पुर नामक नगर में चारों वेद को जानने वाले, चारों वर्ण वाले, चारों आश्रम वाले, लोग रहते थे। एक बार वहाँ के ब्राह्मण बल्लभीनाथ का दर्शन करने के लिए गाड़ियों, घोड़ो आदि पर सवार हो, भोजन सामग्री लेकर और अच्छे मूल्यवान वस्त्र पहिनकर पुत्रकलत्र समेत चल दिये गये। रास्ते में चोर लूटमार करने लगे। जिससे वे सभी भयभीत होकर भाग गये लेकिन गाङ्गिल नामक लंगड़ा ब्राह्मण उन सभी के साथ भाग नहीं सका। चोरों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। गाङ्गिल ने डरे हुए अपने भाई से साहसी मनुष्यों की भाँति कहा भ्रातः! कितने हाथी और घोडे हैं? शीघ्र ही बताओ और धनुष दो जिससे इन्हें दिव्य अस्त्र से एक साथ मारूँ। यह सुनकर सभी चोर भाग गये। अतः जो धर्म–अर्थ–काम के विषय में बोलना जानता है उसे पुरूषो में कौन ऐसा है जो बल से जीत सकता है अर्थात् कोई नहीं।

कथा- 52
"जयश्री की कथा"

शुक ने प्रभावती से कहा कि– भूतल पर प्रतिष्ठान नामक नगर में सत्त्वशील नाम का राजा था। उसके पुत्र का नाम दुर्दमन था। वह पैतृक सम्पत्ति को त्याग कर सम स्वभाव वाले मित्रों ब्राह्मण, बढ़ई तथा वणिक् पुत्र के साथ परदेश को चला गया और चारों ने मिलकर विचार किया कि हमें रत्न भूमि समुद्र की सेवा करनी चाहिए। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर समुद्र ने उन चारों को चिन्तामणि के समान गुण वाले चार रत्न दिये घर लौटते समय विश्वास कर सबने चारों रत्नों को बनिये को सौंप दिया।

तब उस दुष्ट ने चारों रत्नो को जांघ के भीतर डालकर सी लिया और मार्ग मे चिल्लाने लगा कि मैं तो मूस लिया गया (ठगा गया)।

उसके ऐसा करने पर उन सबने यह समझ लिया कि यह कपट कर रहा है और विवाद करते–करते वे सब ऐरावती पुरी में नीतिसार राजा के यहाँ गये और अपनी समस्या को बताया। जब यह सब बात राजा के मन्त्री को पता चली तो उसने अपनी पुत्री से बताया। पुत्री ने उन सबको स्नान, भोजन कराके श्रृङ्गार, करके क्रम से प्रत्येक से अपना उपभोग करने के लिए कहा और सौ स्वर्ण मुद्राएँ मांगा। क्षत्रिय, ब्राह्मण एवं बढई ने धनाभाव दर्शाया किन्तु जब वह बनिये के पास गयी तो उसने कहा स्वामिनि! चार रत्न लेकर मेरा उपभोग करो।

इस प्रकार मन्त्री की पुत्री अपने शील की रक्षा करती हुई चारों रत्नों को अपने पिता को सौंप दिया। मंत्री ने उन्हें बुलाकर प्रत्येक को दे दिया। वे भी अपना–अपना धन पाकर कृतकृत्य हो अपने–अपने घर गये।

कथा- 53
"चर्मकार की पत्नी की कथा"

शुक ने कहा चर्मण्वती के किनारे चर्मकूट नामक गाँव है। वहाँ दोहड नाम का चमार था उसकी पत्नी देविका परपुरूषों मे आसक्त रहती थी। एक बार चमार चमड़ा खरीदने बाहर गया तो वह उपपति को अपने घर लाई। जब दोनों सुरत कर चुके तभी उसका पति घर के बाहर आ गया। जब उसने पति को आया हुआ जाना तो निरर्थक वाक्य बड़–बडाती हुई बाहर आयी। उसका वाक्य सुनकर मूर्ख डर गया और मन्त्रवेत्ता को बुलाने चला गया तब तक उसने उस उपपति को भाग दिया।

कथा- 54
"विप्र विष्णु के दूतकर्म की कथा"

शुक ने प्रभावती से कहा कि– शक्रावती नामक नगर में धर्मादिगुणों से युक्त धर्मदत्त नामक राजा था। उसका मन्त्री सुशील था। उस मन्त्री का पुत्र विष्णु परराष्ट्र मन्त्री था। जब उस पद से उसे हटा दिया गया तो वह धनहीन होकर भी मैं राज–कुल का अमात्य हूँ ऐसा अहंकार युक्त और कठोर हो गया। मन्त्री ने राजा से कहा कि विष्णु के ऊपर आपकी कोई कृपा नहीं है वह आपका भक्त, अनुरक्त और दूतकर्म में प्रवीण है, तो देव? कहीं भेजकर इसकी परीक्षा लें। तब राजा ने भस्म रूप भेट सामग्री पर अपनी मुहर लगाकर उसे विदिशा नगर में शत्रुदमन नामक राजा के पास भेजा। राजा ने जब उस अमङ्गलकारी भस्म को देखा तो कुपित हो गया। विष्णु ने राजा को क्रोधित देखकर कहा कि– अश्वमेघ यज्ञ कुण्ड का भस्म है जो त्रेता की अग्नि से उत्पन्न पवित्र पापनाशक तथा कल्याणकारक है। ऐसा कहकर सहसा उठकर हाथ पर भस्म रख, राजा को समर्पित कर दिया। राजा ने उसके वचन से प्रसन्न हो भस्म का वन्दन किया। उस तुष्ट राजा ने उसके बदले मूल्यवान उपायन भेजा और विष्णु को सम्मानित कर विदा किया।

कथा- 55
"श्रीधर ब्राह्मण की कथा"

चर्मकूट नामक गॉव में श्रीधर ब्राह्मण था। वहीं पर चन्दन चमार भी रहता था। श्रीधर ने उस चमार से एक जोड़ी जूता बनवाया और पैसे नहीं दिया। वह चमार रोज पैसे मांगता लेकिन श्रीधर यही कहता कि मैं तुम्हें प्रसन्नचित कर दूँगा। बहुत दिन बाद चमार ने ब्राह्मण को पकड़ लिया। उसी समय ग्रामपाल के घर पुत्र हुआ था। तब ब्राह्मण ने छलपूर्वक चमार से कहा मैंने तुम्हें प्रसन्नचित करने को कहा था इस पुत्र के पैदा होने पर तुम प्रसन्न हो या नहीं। चमार यदि नहीं कहता है तो राजा

का दण्ड पात्र बने अन्यथा धन जाता है। उसने कहा मैं प्रसन्न हूँ। अतः छलपूर्वक मुक्त होकर ब्राह्मण अपने घर गया।

कथा- 56
"सन्तक वणिक् की कथा"

त्रिपथ गॉव में सान्तक नाम बनिया बड़ा धनी किन्तु कृपण दुःस्वभाव था और उसे अपना गॉव नही अन्य–अन्य गॉव प्रिय थे। एक दिन वह अन्य गाँव से वसूली करके आ रहा था तो उसे चारों ओर से चोरों ने घेर लिया। चोरों से घिरा जानकर उसने गलग्रह नामक यक्ष के आगे द्रव्य रखकर हाथ में खरिया मिट्‌टी लेकर कहा–देव! मैने तुम्हारी सबसे वसूली की, यह धन जो कुछ वृद्धि (व्याज) समेत मुझे मिला है इसे लीजिए।

यह देखकर कि 'यह तो यक्ष का धन है' उसे प्रणाम कर चोर चले गये और वह भी धन लेकर कुशल पूर्वक घर गया।

कथा- 57
"शुभङ्कर की कथा"

अवन्तीपुरी में विक्रमार्क राजा था। उसकी पत्नी का नाम चन्द्रलेखा था। मदनातुरा उसने शुभङ्कर नामक राजपण्डित को चाह लिया और अपने स्थान पर अपनी दासी को अपना परिधान पहनाकर स्वयं दासी का वेष बनाकर कामुक के घर जाकर रतिक्रीडा नित्य इच्छा भर करती। एक दिन राजा ने रानी की चोरी पकड़ ली।

अगले दिन राजा ने प्रातः क्रियाओं को समाप्त कर पण्डित शुभङ्कर और रानी को बुलाया। पण्डित को सिंहासन पर बिठाकर बात–चीत के सिलसिलें में राजा ने हँसते हुए कहा– 'कृतकं मन्ये भयं योषिताम्' यह वचन सुनकर उसका हृदय अपने दोष से विस्मत हो गया और पण्डित ने कहा–

हे मदनावतार[1], तुम्हारी कीर्ति समुद्र के भयङ्कर ग्राहों से व्याप्त जल को लॉघ जाती है, निराधार आकाश में स्थित होती है, दुर्गम पर्वतों के शिखर पर चढ़ जाती है, विषैले सर्पो से व्याप्त पाताल लोक को अकेले चली जाती है, अतः मैं समझता हूँ कि स्त्रियो का भय कृत्रिम होता है।

ऐसा सुनकर राजा ने रानी को उस पण्डित के हाथ पकड कर सौप दिया। अब पण्डित राजा की कृपा से उसके साथ सुख भोगने लगा।

कथा- 58
"दुःशीला पति और गणपति की कथा"

लोहपुरी नामक नगर मे राजड नाम का एक नीची जाति का व्यक्ति था। उसकी पत्नी दुःशीला पर पुरूषों में अत्यन्त आसक्ति रखती थी। वह पद्मावती पुरी सूत बेचने जाया करती थी। एक दिन उन सभी ने गणेश जी को मनौती मानी। उसने चुम्बन की मनौती मानी। गणेश जी ने सभी का लाभ कराया। तब सभी ने अपनी–अपनी मनौती गणेश जी को दिया। जब दुःशीला की बारी आयी तो विनोद प्रिय गणेश जी ने उसका अधर धर लिया। यह सारा कथा सखियों ने उसके पति को जाकर सुनाया। यह सुनकर उसने गणेश जी के सामने एक गधा के साथ रमण करना प्रारम्भ कर दिया। तब गणेश जी को हॅसी आ गयी। उनके हॅसने से दोनों होंठ शिथिल हो गये। इस प्रकार वह छूटकर गणेश जी को प्रणाम कर अपने पति के घर चली गयी।

इस प्रकार जो समयोचित कार्य करता है उसका यही फल होता है कि वह समय की परख रखने वाला व्यक्ति कदापि नष्ट नहीं होता।[1]

---

1 समयोचितमारम्भं कुरूते यस्तु कृत्यवित्।
सर्वदा तु फलं तस्य समयज्ञो हि शिष्यते।
शुकसप्तति श्लोक सं० 278, पृ०सं० 237

अधिक देर तक इधर–उधर घूमता रहा तब उसने मनमानी रति किया और पति से इस प्रकार कहा–

हे मूर्ख! तुम्हारे सामने मैंने मनमानी रति की तुम शूर किन्तु मेरे अहित हो अत. मै तुम्हारे यहॉ से जा रही हूँ और उपपति द्वारा लाये गये घोडे पर चढकर चली गयी। उसको जाते देख राहड भी लज्जित हो मुख छिपाकर रह गया। अतएव स्त्रियों के अधीन होकर कौन तिरस्कृत नहीं होता। क्योकि–

(स्त्री के वश में होकर) प्राचीन काल मे शङ्कर को नाचना पड़ा। श्रीकृष्ण ने रास किया और ब्रह्म पशुता को प्राप्त हुये, स्त्रियो से किसकी विडम्बना नहीं हुई?[1]

शुक का यह वचन सुनकर प्रभावती ने कहा स्त्री, जन्म का, वृद्धि का तथा सुख का कारण है, उसकी तुम कैसे निन्दा करते हो?[2]

शुक ने कहा–तुम्हारी यह बातें पतिव्रता के विषय से सम्बन्धित हैं, अन्य स्त्रियों के विषय में यह बात नहीं लागू होती।

कथा- 60
"राजदूत हरिदत्त की कथा"

वीर नामक राजा की सभा के विषय में कच्छ देश के राजा ने सुना कि वह आश्चर्यमय, देवनिर्मित तथा सकल रत्नों से विभूषित है। उसने अपने दूत हरिदत्त को सुन्दर रत्न तथा घोड़े एवं हजार उपायन देकर भेजा। वह दूत उसकी पुरी में जाकर राजा से बोला–मेरे स्वामी ने आपकी विचित्र सभा को देखने के लिए मुझे भेजा है।

---

1 आननर्त पुरा शम्भुर्गोविन्दो रासकृत्तथा।
ब्रह्मा पशुत्वमापन्नः स्त्रीभि. को न विडम्बितः।।
शुकसप्ततिः, श्लोक सं० 284, पेज स० 241–42

2 उत्पत्तिकारणं तन्वी तन्वी वृद्धेश्च कारणम्।
सुखस्य कारणं तन्वी सा कथ कीर दुष्यते।
शुकसप्ततिः श्लोक सं० 287, पेज सं० 242

दूसरे दिन राजा ने दूत को बुलाया। वह दूत विचित्र रत्नों से जटित सभा को देखकर 'यह सभा स्थलमय है या जलमय है'– ऐसा निश्चय करने में असमर्थ रहा। तब उसने सुपारी का फल डालकर स्थल का ज्ञान प्राप्त किया और अपने घर गया।

कथा- 61
"तेजुका ओझा की कथा"

खोरस नामक गाँव मे पार्श्वनाथ नाम का बनिया रहता था। उसकी पत्नी तेजुका रूपसम्पन्न रतलोलुप कुलटा थी। एक बार वह सखियों के साथ देवता की सवारी निकलने का उत्सव देखने गयी और एक पुरुष का रुप देखकर उसके साथ रति की इच्छा की और उसे बुलाकार कहा– किसी भी दिन हमारे घर के द्वार पर घडे मे बिच्छू डाल जाना। तब मैं बिन्छू से दष्ट बनूँगी–मुझे बिच्छू ने काट लिया है ऐसा बहाना बनाऊँगी। तुम हमारे दरवाजे पर बैद्य के रूप मे रहना। ऐसा संकेत कर दोनों घर गये। घड़े में स्थित इस बिच्छू ने मुझे काट लिया यही रट लगा दी।

वह पुरूष भी उस समय वैद्य होकर पर उसके द्वार पर खड़ा हुआ तभी बनियें ने कहा– वैद्य! कृपाकर इसे विषरहित करो।

तब बैद्य ने किसी कड़वी दवा को उसके ओठ पर पोतकर उसके पति से कहा– 'विषस्य विषमौषधम' के अनुसार तुम इसके ओठ को चूसो। कड़वी औषधि से मिश्रित ओठ के आस्वाद से क्षणमात्र में उस बनिये का मुख कडुवा हो गया। तब बनिये ने कहा– तुम्हीं चूसो और बाहर चला गया। वैद्य ने उस कामातुरा का मनमाना उपभोग किया। उसके बाद वह मायाविनी स्वस्थ हो गयी।

कथा- 62
"कुहन, उसकी पत्नी और नाई की कथा"

गम्भीर नामक गॉव मे कुहन नाम का राजपूत रहता था ईष्यालु, शूरजड़, स्त्रीप्रिय तथा दुर्धार था। उसकी पत्नी का नाम शोभिका और तेजिका था जो सुन्दरी, परपुरुषों में आसक्त तथा रतलोलुप थीं।

एक दिन उन दोनों ने पति से कहा—यदि कोई नाई आ जाता तो अच्छा होता। तब उसने चिक के भीतर से ही उनके नख काटने के लिए धूर्त नाई को भेजा। उन दोनों ने नाई को सुवर्ण कङ्कण देकर गुप्त रूप से कहा—इस धन को ग्रहण कर तुम, हम दोनों की सङ्गति किसी परपुरूष से कराओ।

एक दिन नाई ने कामकला में निपुण अपने मित्र का स्त्रीवेश कराके उन दोनों के पति से बोला—मैं किसी कार्यवश दूसरे गाँव को जा रहा हूँ मेरी यह प्रिया है, आपके घर के अतिरिक्त अन्य जगह इसे छोड़ नहीं सकता, क्योंकि आपके घर में स्त्रियो पर अच्छा नियत्रण रहता है।

उसने स्वीकार कर लिया कि मेरे घर छोड़ जाओ। तब नाई ने उसे वहाँ छोड़, उन दोनो स्त्रियों से जाकर कहा—इसे तुम लोग अपनाना। वह दिन में स्त्री रूपी और रात में कामुक हो राजपूत की दोनो स्त्रियों का प्रतिदिन उपभोग करता। स्त्रीलोलुप वह राजपूत उसकी सङ्गति की याञ्चा करता लेकिन वह मना कर देता। फलतः उसे उसके स्त्री होने का भ्रम पैदा हुआ। अतः उसने अपने भ्रम को दूर करने के लिए देवी के आदेशानुसार महोत्सव में तीनों को नग्न अवस्था में मृत्य करने को कहा। अगले दिन उस स्त्रीरूप धारी पुरूष ने इस प्रकार अङ्ग विन्यास किया कि देखने पर स्त्री ही समझ में आता था। इस प्रकार वह राजपूत उसके द्वारा मूर्ख सिद्ध हुआ।

कथा- 63
"शकटाल और चाणक्य की कथा"

शुक ने प्रभावती से कहा कि– जिस प्रकार शकटाल ने अपने कुटुम्ब के भरण–पोषण के लिए उत्पन्न दु:ख को चाणक्य के द्वारा नन्दकुल को उच्छिन्न कर दु:ख का शमन किया उसी प्रकार यदि तुम भी करना जानती हो तो जाओ। अन्यथा तुम्हारा दूसरे के घर जाना युक्त नहीं है।

कहा गया है– जिसका परिवार तारागण है, जो औषधियों का स्वामी है, शरीर जिसका अमृतमय, जो कान्ति से युक्त है– ऐसा चन्द्रमा भी सूर्यमण्डल में जाकर कान्तिरहित हो जाता है। अत. यह सत्य है कि दूसरे के घर जाकर सभी लघुता को प्राप्त होते हैं।[1]

कथा- 64
"मण्डुका और उसकी सखी देविका की कथा"

शुक ने प्रभावती से कहा कि–कूटपुर नामक गाँव में सोमराज नामक राजपूत था। जिसकी पत्नी मण्डुका बड़ी सुन्दर तथा परपुरूषों में आसक्त रहती थी। उसका उपभोग, संकेतित एक मनुष्य, घण्टा लिए, रात मे घर के ऑगन में किया करता। एक दिन उसके पति ने घण्टे का शब्द सुनकर बैल के आने का सन्देह कर हाथ में लाठी लेकर दौडा।

मण्डुका के पति को घण्टा के शब्द का अनुसरण कर आता देखकर देविका नामक सखी ने उसे भगाकर घण्टा हाथ में ले लिया और कहा–

---

1 उडुगणपरिवारो नायकोऽप्योषधीना–
मममृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः।
भवति विकलमूर्तिर्मण्डलं प्राप्य भानोः
परसदननिविष्टः को न धत्ते लघुत्वम्।।

शुकसप्तति: श्लोक सं० 307, पेज सं० 257

कामुक बैल घबड़ाकर भाग गया। वह लौटकर पत्नी से अपने पौरुष का वर्णन करने लगा।

कथा- 65
"श्रावक श्रीवत्स की कथा"

शुक ने प्रभावती से कहा कि– जनस्थान नामक नगर में नन्दन नामक राजा नाम के अनुसार गुणवाला था। उसी नगर में परम शिव भक्त श्रीवत्स नामक साधु था। एक बार वह शिष्यों समेत वाराणसी नगर को जा रहा था। रास्ते में एक शिष्य को मांस लाने के लिए भेजा। अन्य साधुओं ने उसे ऐसा करते देख लिया। जब सभी साधु बैठ गये तब वह साधु हँसने लगा और सभी साधुओं से पूछने पर कहा– यह ऐसा विचित्र शिष्य है। मैंने कहा–''मां संवर्तते'' इति, इसने नासमझी से इस वाक्य के 'मां' के साथ संवर्तते के सम् को मिलाकर वाक्य का विच्छेद यों कर दिया–'मांसं वर्तते'। तदुनसार व्यवहार में प्रवृत्त हुआ।

कथा- 66
''हंसराट शङ्खधवल की कथा"

भूतल पर निर्जन, पक्षियों को रूचिकर एवं प्रिय, दशयोजन विस्तृत एक रम्य वन है। उसमें दो कोस विस्तृत शीतल छाया वाले, जलाशय के तीर पर स्थित बरगद के वृक्ष पर हंसधवल नामक हंसराज कुटुम्ब समेत दिन भर विचरण करके शाम को विश्राम करता था। एक दिन वे हंस शिकारी की जाल में फॅस गये। अपने कुटुम्ब को उस प्रार जाल में बंधा जानकर शंखधवल ने कहा–पुत्रों! जब वह व्याध प्रातः तुम लोगों को देखे तो तुम सब मुर्दे के समान श्वांस छोड़कर लेट जाना और वह तुम्हें मरा हुआ समझकर भूमि पर फेंक देगा तो तुम सब उड़ जाना। बहेलिया प्रातः आया और उसने उनको मरा हुआ समझकर फेंक दिया और वे सब उड़कर अभीष्ट देश को चले गये।

कथा- 67

"मकर और प्लवङ्गम (बन्दर) की कथा"

शुक ने प्रभावती से कहा कि– पुष्पाकर वन में वनप्रिय नाम का एक बौना वानर था। उसने समुद्र सीमा के जल में लोटते–पोटते घड़ियाल को देखकर कहा हे मित्र! क्या तुम जीवन से ऊब गये हो जो पृथ्वी तल पर आये हो।

उसने कहा– हे वानर! विधाता ने जिसके लिए जो स्थान और जो आजीविका विदित कर दी है, उसका मन उसी में रमता है अन्यत्र नहीं।[1]

कहा भी गया है– (श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं) हे लक्ष्मण! सर्वतः स्वर्ण निर्मित लङ्का मुझे पसन्द नहीं, वंश परम्परा प्राप्त अयोध्या धन रहित भी मुझे सुखकर है।[2]

यह सुनकर उसने कहा–स्थल पर उत्पन्न प्राणी धन्य हैं जहॉ आप सरीखे प्रियवादी मित्र हैं। यह सुनकर वानर ने कहा–आज से तुम मेरे प्राणो से भी अधिक प्रिय मित्र हुए और उसे अमृत सदृश पके फल दिये।

मकर की पत्नी ने जब पके फलों का वृतान्त जाना तो उसने गर्भ के प्रभाव से वानर के हृदय का मांस खाने की अभिलाषा व्यक्त की।

मकर ने वानर से कहा–मित्र! मेरी पत्नी ने तुम्हें बुलाया है जरा चलकर मेरे घर की परिचर्या का भी अनुभव कीजिए। ऐसा विश्वास दिलाकर उसे पीठ पर बिठाकर चल दिया। शङ्कित वानर ने कहा–मित्र! वहाँ चलकर मुझे क्या करना होगा।

ऐसा सुनकर मगर ने सोचा अब तो मैं इसे उस स्थान पर ला चुका हूँ जहाँ से यह समुद्रतट, को वापस नहीं जा सकेगा इसलिए साफ–साफ बता दिया।

---

1 यस्य यद्विहितं स्थानं यस्य यद्वेतनं कृतम्।
तत्रैव रमते चित्त तस्य नान्यत्र वानर।।
शुकसप्ततिः, श्लोक सं० 313, पृ०सं० 263

2 सर्वस्वर्णमयी लंङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।
पितृक्रमागतायोध्या निर्धनापि सुखायते।।
शुकसप्ततिः, श्लोक सं० 314, पृ०सं० 263

वानर ने कहा—मगर! तो तुम मुझे बेकार ले जाते हो क्योंकि मैं हृदयहीन हूँ। मेरा हृदय गूलर अथवा बरगद के पेड़ पर रहता है, उसे लेकर मैं पुनः जल में वापस आता हूँ।

ऐसा कहने पर मूर्ख मगर समुद्र के किनारे वापस आया। वानर भी उसकी पीठ से उछलकर वृक्ष पर चढ़ गया और मगर से बोला— अब पेड़ पर स्थित मुझे तुझ ऐसे लोग नही ग्रहण कर सकते।

कथा- 68
"वचचेवति की कथा"

विद्यास्थान नामक एक ब्राह्मणों का गॉव है। जहॉ पर केशव नामक ब्राह्मण ने स्नान के लिये गये हुए सरोवर पर एक सुन्दर बनिये की पुत्री देखी। वह उसके साथ रति करना चाहता था। वणिक् पुत्री ने ब्राह्मण से सिर पर दूसरा घड़ा रखने को कहा। घड़ा रखते समय उसने उसके ओठ चूम लिए। ऐसा करता हुआ वह उसके पति द्वारा देख लिया गया और राजा के पास लाया गया। उसका वितर्क नामक मित्र था। उसने उसके पास आकर यह कहा—मित्र!—राजा के पास पहुॅचकर 'वचचेवति' वाक्य ही कहना और कुछ नहीं। वैसा करने पर मन्त्री ने कहा— यह निर्दोष है। इसकी ऐसी प्रकृति ही है। उसी उत्तर से लेकर लोक में विर्तक की सहायिका बुद्धि से वह सज्जनता को प्राप्त माना गया।

कथा- 69
"वेजिका की कथा"

कलास्थान नामक स्थान है, वहाँ एक बनिया था जिसकी भार्या वेजिका अत्यन्त प्रिय थी। एक दिन जब वह पति को स्नाान करा रही थी तो उपपति को मार्ग पर जाता देखकर यहाँ काफी पानी नहीं है— ऐसा बहाना बनाकर पानी लेने घर से निकल पड़ी और उपपति के साथ बहुत समय लगा दिया। तब जार से उपभोग की

गयी उसने अपने पति को धोखा देना सोचकर कुएँ में कूद गयी। बहुत शोरगुल मचा। कुएँ मे स्त्री गिर गयी—ऐसा प्रवाद फैल गया। उसके पति ने यह प्रवाद सुनकर अवश्य मेरी पत्नी कुएँ में गिर गयी होगी। वह जल्दी से आया और अपनी पत्नी को कुएँ में से निकाला और सम्मान किया।

कथा- 70
''प्रभावती और मदन की कथा''

इतनी कथाओ के अन्त होते—होते उसका पति मदन विनोद विदेश से आ गया। उसके आ जाने वह उसी प्रकार पूर्ववत् उसके प्रति स्नेह प्रदर्शित करने लगी। और बोली—आर्यपुत्र! आप वन्दनीय है जिनके घर में त्रिविक्रम के लाये हुए दो पक्षियों में से एक शुक सब लोगों का हितभाषी है, विशेषतः मेरा तो बन्धु के समान है, ज्यों—ज्यो वह शुक की प्रशंसा करती त्यों—त्यों शुक लज्जित होता जाता था।

तब मदन उसका वचन सुनकर बोला—शुक ने तुम्हारा क्या उपकार किया है। यह कैसे इस प्रकार गुणशाली हो गया।

उसने कहा—स्वामिन्! तुम्हारे विदेश चले जाने पर कुछ समय तक मैंने तुम्हारा वियोग सहा, बाद में दुष्ट सखियों की सङ्गति में पड़ गयी। अन्य पुरूष से रमण करने की इच्छा वाली मेरे गमन में बाधा डालने वाली सारिका को मैंने मारना चाहा, लेकिन वह उडकर दूर चली गयी। इस शुक ने अपने वाग्प्रपञ्च से मुझे सत्तर दिनों तक रोक रक्खा, अतः मैने कर्म से तो पाप नही किया केवल मनसा पाप किया।[1] आज से तुम मेरे जीवन—मरण के स्वामी हो—मेरा जीवन मरण आपके हाथ में हैं। ऐसा सुनकर मदनविनोद ने शुक से पूछा तो उसने कहा—

---

1 अतो मया कर्मणा पापं नं विहितं मनसा तु कृतम्।
शुकसप्तति: पेज सं० 276.

दुष्टो की सङ्गति से सज्जन भी विकार को प्राप्त हो जाते हैं। दुर्योधन का साथ करने से भीष्म गायो को हरने के लिए गये थे।[1]

क्योकि प्राचीन काल मे छल से विद्याधर ने राजा की पुत्री का उपभोग किया था। विद्याधर के द्वारा उपभुक्त उस कन्या को उसके पति ने निर्दोष ही माना और शुक ने मदन के आगे इस कथा को कहा–

भूतल पर मलय पर्वत है। उसके अङ्क पर मनोहर नाम गन्धर्वपुर है। उसमें मदन नामक गन्धर्व रहता था। उसकी रत्नावली नाम की पत्नी थी।

उनकी पुत्री मदनमञ्जरी थी। उसके रूप को देखकर देव अथवा दानव सभी उधोमुख अथवा पतनोन्मुख हो मुग्ध हो जाते थे।

एक दिन नारद जी आये। वे भी इसके रुप को देखकर मूर्च्छित और सकाम हो गये और वाद में होश आने पर शाप दिया कि इसका शील अवश्य भङ्ग होगा। तब राजा ने कहा–स्वामिन्! प्रसन्न होकर अनुग्रह करें।

नारद ने कहा–इसके शील के भङ्ग होने से इसे दोष नही होगा और न इसका पति परित्याग करेगा और कहा कि मेरु पर्वत पर विपुलापरी में रहने वाला कनकप्रभ नाम गन्धर्व है, वही तुम्हारी पुत्री का वर होगा।

तब मुनि के कथानानुसार उसका विवाह गन्धर्व के साथ हुआ। वह एक बार उसे छोडकर कैलाश को गया। तब किसी विद्याधर ने उसके पति का गन्धर्व रुप धारण कर उसका भोग किया। उसे दुष्ट मानकर उसका पति देवी के सामने उसे मारने लगा तो उसने कहा स्वामी! तुमने मुझे वर दिया था कि तुम्हें गन्धर्व चक्रवर्ती पुत्र होगा तो क्यों बिना पुत्र का मुख देखे मर रही हूँ।

---

1 असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणे गतः।
शुसप्तति: श्लोक सं० 336, पेज सं० 279

इस प्रकार विलाप करती मदनमञ्जरी के सामने उसके विषय में देवी ने कनकप्रभ से कहा–हे गन्धर्व वीर इसका कोई दोष नही है, विद्याधर ने माया से तुम्हारा रूप धारण कर इसका उपभोग किया तो रहस्य न जानने वाली इसका दोष नही है और नारदमुनि का ऐसा शाप भी था।

हे वणिक् पुत्र! यदि मेरा वचन सत्य समझते हो तो इस निर्दोष के प्रति अनुग्रह करो। इस प्रकार शुक के कहने से मदन ने उसे अङ्गीकार किया। हरिदत्त ने भी पुत्र के आगमन से बडा भारी उत्सव किया। उस महोत्सव में एक दिव्यमाला आकाश से आ गिरी। उस माला का दर्शन होने पर शुक, सारिका और त्रिविक्रम शाप मुक्त हो स्वर्ग को गये। मदन भी प्रिया प्रभावती के साथ सुख भोगने लगा।

कथाओं का वर्गीकरण एवं उद्देश्य :

उपर्युक्त कहानियों में 69 कथायें शिंक्षापरक हैं। 70 वी कथा भी जो कि उपसहार के रुप मे शुक द्वारा कही गयी भी शिक्षा प्रद तो है ही साथ ही निश्चित उद्देश्य को ध्यान मे रखकर कही गयी है। प्रत्येक कहानी का एक लक्ष्य है, एक उद्देश्य है। ये कहानियॉ आकर्षक एवं मनोरञ्जक होने के साथ ही एक उद्देश्य को भी व्यक्ति के समक्ष रखती हैं– वह है कुमार्ग से बचने का।

यदि इन कहानियो का वर्गीकरण किया जाय तो इनमें से लगभग आधे से अधिक अर्थात 40 से 45 कथाये व्यभिचारिणी स्त्रियों की कथायें हैं। इन कहानियों के मुख्य पात्र विवाहिता स्त्रियॉ है जो पति के रहने पर भी उपपति के साथ रति भोग करती है और पकडे जाने पर उसे किसी न किसी बहाने बड़े चालाकी के साथ छिपाने का प्रयत्न करती हैं। यशोदेवी, राजिका, धनश्री, श्रियादेवी आदि इसी श्रेणी की विवाहित स्त्रियॉ है। कुछ कथाये वेश्या स्त्रियों से सम्बन्धित हैं जो व्यभिचार के माध्यम से पुरुषों को धोखा देती हैं। जैसे–कलावती, मदनावेश्या आदि इसी श्रेणी के अंतर्गत आती हैं। कतिपय कथायें कुलटा स्त्रियों से भी सम्बन्धित हैं जो परपुरूषों का

व्यभिचार के माध्यम से अपना स्वार्थ सिद्ध करती हैं जैसे– केलिका एवं धूर्तमाया कुट्टिनी की कथा। जो चौर्यरति सम्बन्धी शिक्षा देने के माध्यम से वणिक् पुत्र का सम्पूर्ण धन ग्रहण कर लेती हैं।

इन कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि 'शुकसत्तति' कालीन (14 वीं शताब्दी के आस–पास) समाज में विवाहित स्त्रियों की दाशा सुदृढ नहीं थी। पति के कार्यवश विदेश चले जाने पर पत्नियाँ अपने मनोरञ्जन हेतु व्यभिचार रूप कुमार्ग का अवलम्ब लेती थीं और उस घृणित कार्य का पता लग जाने पर उसे छिपाने के लिए कभी चतुरता पूर्वक, कभी बुद्धि–कौशल द्वारा और कभी व्यवहार–कौशल द्वारा उसे छिपाने का हर संभव उपाय करती थीं किन्तु समाज में एक ऐसा भी प्रबुद्ध वर्ग था जो इन स्त्रियो के विषय में यह चिन्ता करता था एवं प्रयत्न करता था कि वे कुमार्ग पर न जायें। वस्तुतः इसी भावना को लेकर शुकसप्तति की रचना हुई है। कवि शुक के माध्यम से यह अथक प्रयास कर रहा है कि कथा की नायिका प्रभावती मदनविनोद के परदेश चले जाने पर यह प्रयत्न कर रही है कि वह व्यभिचारिणी न बने, जिसके फलस्वरूप 70 कहानियों का जन्म हुआ। यद्यपि ये कहानियॉ कल्पित ही अधिक हैं किन्तु इस बात से भी नकारा नहीं जा सकता कि कवि इस प्रकार की स्त्रियों के आचरण से प्रभावित है। कुछ कथायें पशुओं से भी सम्बन्धित हैं। जैसे–शशक और पिङ्गलनाम सिंह की कथा, व्याघ्रचारी और सिंह की कथा, व्याघ्रमारी और जम्बुक की कथा, जम्बुक की मुक्ति की कथा, हंसराट् शङ्खधवल की कथा, आदि।

उपर्युक्त पशुओं की कथाओं के माध्यम से कवि सबल पर निर्बल प्राणी के विजय को द्योतित करना चाहता है। शश, वानर आदि निर्बल प्राणी होते हुये भी अपनी बुद्धि पराक्रम द्वारा शक्तिशाली, पराक्रमी सिंह जैसे पशुओं को कैसे परास्त करते हैं तथा अपने प्राणों की रक्षा करते हैं इत्यादि भावना को लक्ष्य में रखकर ये कथाये लिखी गयी हैं।

कुछ जगह पक्षियों से सम्बन्धित कथाये भी हैं जैसे मन्दोदरी और उसके मयूर भक्षण की कथा।

एकादिक कथायें चोरो से सम्बन्धित हैं जैसे–सर्षपचौर की कथा।

कुछ कथायें भूत एवं पिशाचों से सम्बन्धित हैं– जैसे मूलदेव एवं पिशाच की कथा, करगरा एवं करगरानाथ की कथा।

इन पक्षियो एव भूत–प्रेतों की कथा के माध्यम से कवि ने सबल पर निर्बल की विजय किस प्रकार होती है आदि भावना का प्रदर्शन किया है।

इस प्रकार समस्त 70 कहानियों का पर्यालोचन करने के बाद दो ही प्रमुख विचार सम्मुख आते हैं–

1. विवाहित स्त्री द्वारा कुमार्ग का अनुसरण न करना।
2. पराक्रमी, शूरवीर किन्तु धोखेबाज प्राणियों से कमजोर व्यक्ति किस प्रकार अपनी रक्षा करें।

प्राचीन काल से चली आ रही ये दोनों ही भावनायें आज भी समाज में देखी जा सकती है।

* * * * *

"कथा में पात्रों का विधान एवं शुकसप्तति के पात्रों का परिचय"

(अ) कथा में पात्र विधान

(1) कथा में पात्रों की उपयोगिता :

किसी भी काव्य का मूलाधार पात्र ही होता है। दशरूपक में धनञ्जय ने रुपक के प्रमुख तीन भेदक तत्व माना (1) वस्तु, (2) नेता, (3) रस। "वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः"।

वस्तु के पश्चात् पात्र कथा का अनिवार्य तत्व है क्योंकि पात्रों के अभाव में कथा का विकास असम्भव है। कथानक के अन्तर्गत पात्रों के आचरण, पात्रों के व्यवहार, उनके कथोपकथन, उनकी जीवनचर्या तात्कालिक सामाजिक एवं सास्कृतिक परिस्थितियों का बोध कराते हैं, साथ ही साथ कर्ता, कवि के जीवन आदि का रहस्योद्घाटन करते हैं।

पात्र रसभिव्यक्ति के केन्द्र बिन्दु होते है। वहीं कथा का आदि और अन्त कर्ता होता है। अतएव कथा में पात्रो की उपस्थिति तो और भी अनिवार्य हो जाती है। लघु कथाओ के अन्तर्गत विस्तृत विविधरूपो का दिग्दर्शन कर पाना तो कवि के लिए कठिन हो जाता है, किन्तु कवि पात्रों के चरित्र चित्रण के माध्यम से विविध प्रकार के जीवन संदेश देने का प्रयास करता है।

'शुकसप्तति' के कथाओं के अन्तर्गत विविध प्रकार के पात्रों का कथन हुआ है। इसमें राज परिवार, ब्राह्मण, राजा–महारानियाँ, राजकुमार, मन्त्री, सेनापति, स्वामीभक्त, सेवक, चोर, कपटी, दास–दासियॉ, गणिकायें गन्धर्व इत्यादि सभी वर्गों के पात्रों का इन कथाओं के माध्यम से वर्णन हुआ है।

(2) <u>पात्रों का वर्गीकरण</u> :

पात्रो का वर्गीकरण कई आधारो पर किया गया है। सामान्यतया पात्र दो वर्गों मे रखे जाते है, (1) पुरुष पात्र, (2) स्त्रीपात्र। शुकसप्तति के समस्त पात्रों को प्रमुख रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

(1) समस्त पुरूष पात्र, (2) समस्त स्त्री पात्र, (3) पशु एवं पक्षी श्रेणी के पात्र, (4) भूत, पिशाच आदि। यद्यपि कथाओं में प्रधानता स्त्री और पुरुष पात्रों की है।

(क) <u>इत्तिवृत्त के आधार पर</u> :

कथावस्तु किसी भी रचना का मूलाधार है। कथावस्तु के स्वरूप के अनुसार ही उसके अन्तर्गत आने वाले समस्त पात्रों का स्वरूप निर्धारित होता है। कथावस्तु भी कई प्रकार की होती है दिव्य, अदिव्य अर्थात् मर्त्य और दिव्यादिव्य। दिव्य कथावस्तु के पात्र दिव्ययोनि के, अदिव्य में पृथ्वी लोक के तथा दिव्यादिव्य के अन्तर्गत पृथ्वीलोक से सम्बन्धित ऋषि, मुनि इत्यादि पात्र आते हैं।

शुकसप्तति के अधिकांश पात्र मर्त्य अर्थात् अदिव्य श्रेणी के हैं। कुछ पात्र जैस–गन्धर्व आदि दिव्य कोटि के है। जिनका परिचय आगे दिया जायेगा।

(ख) <u>घटनाओं के आधार पर</u> :

कथावस्तु की आवश्यकता एवं रसपरिपोषण की दृष्टि से अनेक प्रकार की घटनाओं की संरचना कवि करता है। जैसी घटनायें होती हैं उसी के अनुसार पात्रों का भी सृजन किया जाता है। कुछ घटनाओं का विषय राजवर्गीय होता है। कुछ प्रजावर्गीय अर्थात लोक या समाज से सम्बन्धित होती हैं। कुछ आर्षवर्गीय पात्रों को लेकर के उपदेशात्मक होती हैं। इस प्रकार घटनाओं के आधार पर पात्रों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है– (1) राजवर्गीय, (2) प्रजावर्गीय (लोक एवं समाज), (3) आर्षवर्गीय।

राजा, मन्त्री, महारानियाँ, राजपुरूष इत्यादि राजवर्गीय पात्रो के अंतर्गत आते है जिनका पर्याप्त वर्णन शुकसप्तति मे हुआ है। जैसे– पुष्पहास और रानी, राजा सुदर्शन, राजा शत्रुमर्दन एव पुत्री मदनरेखा आदि की कथायें।

प्रजावर्गीय पात्रो मे साधारण कोटिक स्त्रियाँ, ब्राह्मण, वणिक्, कृषक, चोर, धूर्त, सेवक, (मास विक्रेता) अधिकाश कथाओं के पात्र इसी श्रेणी के हैं।

अनेक कथाओ मे शुकसप्तति में इस प्रकार के पात्रों का वर्णन है।

आर्षवर्गीय पात्रो मे ऋषि, मुनि, सन्यासी इत्यादि पात्र आते है। जिनका वर्णन भी शुकसप्तति मे यत्र–तत्र प्राप्त होता है। ये समस्त पात्र कथानक के मुख्य पात्र (नायक–नायिका) से व्यतिरिक्त सहायक पात्र रूप मे प्रयुक्त होते है।

(ग) नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर :

कथावस्तु के अन्तर्गत गौण पात्रो से व्यतिरिक्त मुख्यपात्र जिन्हें हम नायक–नायिका कह सकते हैं, का वर्णन होता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार नायक मुख्य रूप से चार प्रकार के होते हैं–

(1) धीरोद्धत, (2) धीरललित, (3) धीरोदात्त, (4) धीरप्रशान्त[1]

नाट्यशास्त्रीय अन्य ग्रन्थों में भी नायक भेद देखे जा सकते है।[2]

सभी प्रकार के नायकों में धीर शब्द जुडा हुआ है। धीर का वस्तुतः अर्थ है – धैर्ययुक्त अर्थात् महान संकट मे भी कातर न होने वाला।[3]

दशरूपक के अनुसार नायक चार प्रकार के बतलाये गये हैं–

---

1 नाट्यशास्त्र– 24.16–17

2 नाट्यदपर्ण– चतुर्थ विवेक सा०द० तृतीय परिच्छेद।

3 नाट्य दपर्ण– 16

(1) धीर ललित :

चिन्तारहित गीत आदि कलाओं का प्रेमी, सुखी और कोमल स्वभाव तथा आचार वाला नायक धीरललित कहलाता है।[1] जिस नरेश का भोग अर्थात् अप्राप्त वस्तु की प्राप्त (अप्राप्तस्य प्राप्तिर्योगः) तथा क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा– प्राप्तस्य परिरक्षण क्षेमः) की सिद्धि अमात्य इत्यादि के द्वारा कर दी जाती है। चिन्तारहित होने के कारण वह गीत आदि कलाओं मे सलग्न रहता है, और भोगों में आसक्त रहता है। श्रृंगार भाव की प्रधानता होने के कारण वह कोमल स्वभाव (सत्व = चित्त) तथा व्यवहार वाला होता है। इसी से इसे "मृदु" कहा गया है। यही ललित नायक है। यथा (कथा नं० 15) मे गुणाकर, (कथा नं० 19) में धनपाल, (कथा नं० 20) मे सूर नामक कृषक आदि भी धीललित श्रेणी के नायक हैं।

(2) धीर प्रशान्त :

सामान्य गुणों से युक्त द्विज आदि नायक धीर प्रशान्त कहलाता है।[2] विनय इत्यादि जो नायक के सामान्य गुण[3] कहे गये हैं उनसे युक्त द्विज, ब्राह्मण, वणिक्, मंत्री आदि धीरप्रशान्त नायक कहलाते हैं। निश्चिन्तता आदि गुणो से युक्त हाने पर भी विप्र इत्यादि में शान्तता ही होती है, लालित्य प्रधान नही होता। यदि किसी विप्र मे धीरललित नायक के गुण विद्यमान हो तो वह भी धीर–प्रशान्त ही माना जायेगा। किन्तु यह नियम सर्वत्र चरितार्थ नहीं होता है, अन्य क्षत्रिय आदि भी धीर प्रशान्त हो सकते हैं जैसे बुद्ध धीर प्रशान्त नायक ही हैं। यथा – केशव (कथा न० 7) धीर प्रशान्त कोटि का पात्र है। ये कथा का प्रधान नायक नहीं है।

---

1 निश्चिन्तो धीरललित कलासक्त सुखीमृदु·।
दशरूपक, द्वितीय प्रकाश,3 कारिका

2 सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिक·।
दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 4 कारिका

3 नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्ष प्रियवद·।
रक्तलोक· शुचिर्वाग्मी रूढवश· स्थिरो युवा।।
बुद्धयुत्साहस्मृति प्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिक·।।
दशरूपक, द्वितीय प्रकाश,1 कारिका

(3) धीरोदात्त :

उत्कृष्ट अन्त.करण वाला, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, आत्मश्लाघा न करने वाला, स्थिर अहभाव को दबाकर रखने वाला, दृढव्रती नायक धीरोदात्त कहलाता है। अर्थात् जिसका अन्त.करण शोक, क्रोध आदि से अभिभूत नही होता, अपनी प्रशंसा स्वय न करने वाला, उसका गर्व नम्रता से छिपा रहता है, जो स्वीकृत बात का निर्वाह करता है इस प्रकार का नायक धीरोदात्त नायक होता है। यथा – राजाविक्रमादित्य (कथा नं० 9) धीरोदात्त कोटि का नायक है।

(4) धीरोद्धत्त :

जिसमे घमण्ड और डाह अधिक होता है, जो माया और कपट में तत्पर होता है, अहंकारी, चंचल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघा करने वाला है, वह धीरोद्धत्त नायक है। दर्प, शूरता इत्यादि का घमण्ड मात्सर्य (दूसरों की समृद्धि को) न सहना, मन्त्र की शक्ति से अविद्यमान वस्तु को प्रकट कर देना माया कहलाती है और किसी को छलना मात्र ही छद्म है, चल का अर्थ है– अस्थिर (चञ्चल), चण्ड– क्रोधयुक्त, विकत्थन अपने गुणों की प्रशंसा करने वाला, ऐसा धीरोद्धत नायक होता है। यथा– रावण, परशुराम आदि धीरोद्धत कोटि के नायक है।

इसी प्रकार शुकसप्तति ग्रन्थ मे विष्णु नामक पात्र (कथा न० 44) में धीरोद्धत कोटि का नायक है।

श्रृगार रस सम्बन्धी अवस्थाओ के आधार पर नायक के चार भेद किये जा सकते है। (1) अनुकूल, (2) दक्षिण, (3) धृष्ट, (4) शठ[1] जिस नायक की एक ही नायिका होती है वह अनुकूल नायक है।[2] जैसे– शुकसप्तति का प्रमुख पात्र मदन विनोद, माधव सेठ (कथा नं० 32), महाधन वणिक् (कथा नं० 29), आर्य नामक वणिक्

---

1 सा०द० 3/35

2 "ऽनुकूलस्त्वेकनायिक." । दशरूपक द्वितीय प्रकाश 11 वीं कारिका

(कथा नं० 27), सुदर्शन नामक राजा आदि (कथा नं० 23) अनुकूल नायक हैं। जो नायक अन्य नायिका के द्वारा अपहृत चित्त होकर भी पूर्व नायिका के प्रति सहृदय रहता है वह दक्षिण नायक है।[1] यथा– शम्भु नामक विप्र (कथा न० 38), शम्बक नामक तिल–विक्रेता (कथा न० 35), प्रियवद नामक विप्र (कथा नं० 38) आदि दक्षिण नायक है। जिस नायक के अङ्गों मे अन्य नायिका के साथ किये गये रमण आदि चिन्ह विकार रूप मे स्पष्ट व्यक्त होते हैं वे धृष्ट नायक हैं।[2] पूर्वनायिका के प्रति गुप्त रूप से अप्रिय करने वाला शठ नायक होता है।[3] इस प्रकार नायक के 48 भेद हैं। धीरललित इत्यादि चारो प्रकार के नायकों में ये चारों भेद देखे जाते हैं। 4 × 4 = 16 ये समस्त नायक ज्येष्ठ, मध्यम और अधम के भेद से 48 प्रकार के होते हैं।

अनेक प्रकार के नायकों के अतिरिक्त प्रधान नायक की सहायता करने वाले, कथानक के विकास में सहायक तथा प्रासंङ्गिक इतिवृत्त के नायक के रूप में अनेक पात्र होते हैं, ये मुख्यतः नायक के सहायक के रूप में जाने जाते हैं। जैसे पताका नायक[4] विदूषक[5] आदि। शुकसप्तति में सहायक श्रेणी के पात्र अल्प हैं। प्रधान नायक के सहायक पात्रो के वर्णन का इसमे अभाव है क्योंकि अधिकाश कथायें नायिका प्रधान है।

कथावस्तु मे नायिका का एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्थान होता है। लक्षणकारो ने कथानक, चरित्र तथा शरीर की अवस्थाओ इत्यादि के आधार नायिकाओं के भी अनेक भेद किये हैं। "धनिक" के अनुसार सामान्यगुणों से युक्त नायिका होती है, वह तीन प्रकार की होती है। (1) स्वकीया (स्वस्त्री) (2) परकीया (परस्त्री) (3) साधारण

---

1 "दक्षिणोऽस्या सहृदय" दशरूपक द्वितीय प्रकाश 8 वीं कारिका

2 व्यक्ताङ्गवैकृतो धृष्टो। दशरूपक द्वितीय प्रकाश 10 वीं कारिका

3 "गूढविप्रियकृच्छठ" दशरूपक द्वितीय प्रकाश 9 वीं कारिका

4 "पताकानायकस्त्वन्य पीठमर्दो विचक्षण.।
तस्यैवानुचरो भक्ताः किञ्चिदूनश्च तदगुणै" दशरूपक द्वितीय प्रकाश 12 वीं कारिका

5 "एकविद्यो विटश्चान्यो हास्यकृच्च विदूषकः" दशरूपक द्वितीय प्रकाश 13 वीं कारिका

स्त्री (गणिकाआदि)[1] शारीरिक अवस्था और कामचेष्टा की निपुणता के आधार पर नायिकाओ के तीन भेद होते है– (1) मुग्धा, (2) मध्या, (3) प्रौढा। नाट्य दर्पण में कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया और पण्यस्त्री ये चार प्रकार की नायिकायें कही गयी हैं।[2]

स्वकीया नायिका शील, सरलता आदि गुणों से युक्त होती है। जैसे शुकसप्तति की प्रमुख पात्र प्रभावती स्वकीया नायिका है। स्वकीया नायिका तीन प्रकार की होती है– (1) मुग्धा, (2) मध्या, (3) प्रगल्भा।[3] जिसकी अवस्था नवीन होती है जो रतिक्रीड़ा में झिझकने वाली और क्रोध करने मे कोमल होती है वह मुग्धा नायिका है।[4] जिसमें यौवन और काम का उदय हो रहा हो, जो बेसुधी पर्यन्त रति में समर्थ है, वह मध्या नायिका है।[5] जैसे धनश्री (कथा न० 14), सज्जनी (कथा नं० 24), मोहिनी (कथा नं० 27) देविका पुश्चली (कथा नं० 28) आदि मध्या नायिका की श्रेणी में आती हैं। जो यौवन में अन्धी सी, काम से उन्मत्त सी, आनन्द के कारण प्रियतम के अंङ्गो में प्रविष्ट होती हुई सी सुरत के आरम्भ में भी चेतना रहित हो जाती है। वह प्रगल्भा नायिका है[6] जैसे– शशिप्रभा (कथा नं० 2), विषकन्या (कथा नं० 4), सुभगा (कथा न० 10), रम्भिका (कथा न० 11), राजिका (कथा नं० 13), जयिका (कथा नं० 15), स्वच्छन्दा (कथा नं० 19), केलिका (कथा न० 20), मन्दोदरी (कथा न० 21), माढुका (कथा नं० 22), सुन्दरी (कथा न० 29), रत्ना देवी (कथा न० 26) राजिनी (कथा नं० 32), सुभगा (कथा नं० 37), रुक्मिणी (कथा न० 59), तेजुका (कथा नं० 61), मण्डुका (कथा नं० 64) आदि प्रगल्भा नायिकाओं की श्रेणी में आती हैं।

---

1 साहित्यदर्पण 3/56, भाव प्रकाश 94, पक्ति, काव्यानु० 7/26

2 नाट्य दर्पण 4/255

3 मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक्।

4 मुग्धा नववय कामा रतौ वामा मृदु क्रुधि। दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 26 वीं कारिका।

5 मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा। दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 27 वीं कारिका।

6 यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा ययिताङ्गके।
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना।। दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 29 वी कारिका।

परकीया नायिका दो प्रकार की होती है – कन्या तथा विवाहिता। विवाहिता स्त्री को कभी भी प्रधान रस की नायिका नहीं बनाना चाहिए, जबकि कन्या को कवि मुख्य या अमुख्य रस का आधार बना सकता है।[1]

साधारण स्त्री तो गणिका होती है जो कला, प्रगल्भता और धूर्तता से युक्त होती है।[2] वह छिपकर प्रेम करने वाले, सुखपूर्वक धन प्राप्त करने वाले, अज्ञानी, स्वच्छन्द, अहङ्कारी और पण्डक (नपुसक) आदि को, यदि धनवान हो तो अनुरक्ता के समान प्रसन्न करती है और धनरहित होने पर इनको (नि:स्वान) माता के द्वारा निकलवा देती है।[3] जैसे– कलावती नामक वेश्या (कथा नं० 23), कुटनी (कथा नं० 17) साधरण स्त्री की श्रेणी में आती है। भाव–प्रकाश तथा साहित्य दर्पण में भी सामान्य नायिका का विस्तृत वर्णन किया गया है।[4]

उपर्युक्त वर्णित नायक नायिकाओं के लक्षण एवं स्वरूप का अवलोकन करने के पश्चात् यही कहना उचित प्रतीत होता है कि शुकसप्तति की प्रत्येक कथा में धीरललित या धीरप्रशान्त या धीरोदात्त या धीरोद्धत एवं अनुकूल तथा दक्षिण नायक पाये जाते हैं किन्तु अधिकता दक्षिण नायक की है, ठीक इसी प्रकार शुकसप्तति की प्रत्येक कथा नायिका प्रधान है और प्रत्येक कथा में नायिका का स्वरूप श्रङ्गारी है किन्तु कुछ ही कथाये ऐसी है जिनकी नायिकायें मध्या श्रेणी की हैं। इसके अतिरिक्त यदि यह कहा जाय कि अधिकतर कथाओं की नायिकायें प्रगल्भा श्रेणी की नायिका के अन्तर्गत आती है तो शायद यह गलत नहीं होगा।

---

1 अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित्।
कनयानुरागमिच्छात कुर्यादङ्गाङ्गिसश्रयम्। दशरूपक, द्वितीय प्रकाश 32 वीं कारिका

2 साधरणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्। दशरूपक, द्वितीय प्रकाश 33 वीं कारिका

3 छन्नकामसुरवार्थाज्ञस्वन्त्राहयुपण्डकान्।
रक्तेव रञ्जयेदाढ्यान्नि स्वान्मात्र विवासयेत। दशरूपक, द्वितीय प्रकाश 34 वीं कारिका

4 भाव–प्रकाश (95 4), सा० द० (3.67-71),

(ब) शुकसप्तति के प्रमुख पात्रें का परिचय :

(1) मुख्य पात्र :

(क) मदन विनोद :

मदनविनोद धीरोदात्त श्रेणी का नायक है। यद्यपि इस ग्रथ के अन्तर्गत मदन विनोद का प्रारभिक जीवन विषयासक्त कुपुत्र का है किन्तु बाद मे सन्मार्ग का अवलम्ब कर देशान्तर जाना एवं अर्थ सचय इत्यादि करके लौटना आदि कार्य उसे धीरोदात्त नायक की श्रेणी मे स्थापित करते है। शुकसप्तति का यह प्रमुख पात्र है, यद्यपि कवि ने इसका अत्यल्प शब्दो में वर्णन किया है एव अन्य कथाओं के विकास मे इसका योगदान भी नगण्य है तथापि अन्य कथाओ को जन्म देने मे इस पात्र की अभावमूलक भूमिका अवश्य है।

मदनविनोद हरिदत्त नामक सेठ का पुत्र है जो विषयासक्त किन्तु पिता के प्रयास से एव शुक के उपदेश से कुमार्गगामी वह पुत्र माता–पिता के प्रति विनयशील बन जाता है। तदन्तर माता–पिता को प्रणाम कर, अनुज्ञा लेकर और पत्नी से पूछकर देशान्तर को चला जाता है।

मदनविनोद एक बुद्धिमान एवं चतुर पति है। वह एक पत्नीव्रती है। उसे इस बात की आशङ्का रहती है कि उसकी अनुपस्थिति में उसकी शोक–ग्रस्त पत्नी वियोग के दिन किस प्रकार काट पायेगी। उसके कुमार्गगामी होने का भय भी उसे है अतः वह शुक एवं सारिका जो कि एक कुशल, उपदेशक के रूप मे काव्य में वर्णित हैं उन पर अपनी पत्नी की रक्षा का भार उसे सौंप जाता है।

मदनविनोद की ऐतिहासिकता संदिग्ध है क्योंकि इस पात्र का इतिहास में कहीं कोई वर्णन नही मिलता। यह कवि द्वारा एक कल्पित पात्र है। जो अपरोक्ष रूप में प्रमुख पात्र के रुप मे ग्रंथ मे वर्णित है।

(ख) प्रभावती :

यदि यह कहा जाय कि शुकसप्तति ग्रन्थ की कथाओ के जन्म का मूलाधार प्रभावती है तो यह कथन त्रुटिपूर्ण न होगा। शुकसप्तति की समस्त कथायें प्रभावती को शीलभङ्गरुप महापराध से बचाने के निमित्त अस्तित्व में आती हैं जिसे कवि ने दृढतापूर्वक और स्पष्ट रुप में ग्रन्थ के मंङ्गलाचरण मे स्वीकार किया है। "वच्मि चेतो"।

प्रभावती पतिव्रता, सुचरित्रा एव मुग्धा श्रेणी की नायिका है। पति के देशान्तर चले जाने के बाद प्रभावती शोकयुक्त हो जाती है, वियोगावस्था के दिन कुछ समय तो काट लेती है किन्तु कुछ काल पश्चात् सखियों के बहकावें में आकर परपुरूष की सङ्गति में अभिलाषवत् होती है। स्पष्ट है कि प्रभावती पतिव्रता तो है किन्तु अस्थिर बुद्धि की होने के कारण सङ्कट के समय अधीर हो उठती है। धीरा नायिका की कोटि में होती हुई भी वह अधीर हो उठती है अतः प्रभावती "धीराधीरा" नायिका की श्रेणी में आती है।

प्रभावती एक कुशल गृहिणी, धैर्यशील एवं संयमी नारी है। यद्यपि सखियों के द्वारा समझाये जाने पर कुमार्ग पर जाने के लिए उद्यात तो होती है किन्तु शुक के द्वारा उपदेश दिये जाने पर उसका सयमी स्वरुप जाग उठता है और वह शुक की कथा को सुनने का प्रस्ताव मान लेती है। इससे स्पष्ट है कि वह बुद्धिमती एवं साहसी नारी है। साथ ही साथ सदुपदेश के महत्व को गहराई से समझने की शक्ति भी उसमे विद्यमान है। तभी तो वह प्रतिदिन शुक की कथा को धैर्यपूर्वक श्रवण करती है। यद्यपि प्रत्येक कथा के अन्त में शुक उसके सामने प्रश्न रखता है कि ऐसी स्थितियों मे यदि तुम रमण के लिए जाना चाहती हो तो जाओ।

प्रभावती धैर्यशीला होने पर भी विचारशीला नारी है। यही कारण है कि शुक द्वारा "यदि तुम रमण के लिए जाना चाहती हो तो जा सकती हो" का अनिरोधात्मक प्रस्ताव रखे जाने पर भी वह गम्भीरतापूर्वक विचार करती है। इस प्रकार प्रभावती

धैर्यपूर्वक वियोग के दिन व्यतीत करती है और अन्त मे उसका पति के साथ समागम होता है और इस प्रकार वह अपने सच्चरत्रिता की कसौटी पर खरी उतरती है। इस प्रकार प्रभावती एक सुचरित्र, विवेकपूर्ण, धैर्ययुक्ता, पतिव्रता, दृढसकल्पों वाली नारी है।

(ग) शुक :

यदि शुकसप्तति की कथाओं का प्राणाधार शुक को मान लिया जाय तो शायद गलत नहीं होगा क्योंकि शुक ही कथानक का ऐसा अपरिहार्य अङ्ग है जिसके बिना किसी भी कथा की कल्पना असम्भव है। शुक एक प्रकार से ग्रन्थ के प्रमुख पात्र के रूप मे वर्णित है।

शुक एक पक्षी होते हुए भी मनुष्य की भॉति ज्ञानावान, वाक्पटु, नीतिनिपुण, नीतिवक्ता, दूरदर्शिता, सामाजिक मर्यादा आदि गुणो से युक्त है। यही समस्त कथाओ का वाचक एवं उपदेशक है। काव्य में इसकी भूमिका प्रमुख है। शुक मदनविनोद की पत्नी को कुमार्ग पर जाने से रोकने मे सफल होता है। अपनी वाक्पटुता एवं बुद्धिमत्ता से ही वह 70 दिनों में 70 तरह की कहानियॉ सुनाकर प्रभावती के चरित्र की रक्षा करता है। इस तरह सम्पूर्ण कथाग्रन्थ मे शुक छाया हुआ है।

सारिका भी प्रारम्भ मे मदन विनोद की पत्नी को व्यभिचरण करने से रोकती है। किन्तु क्रुद्ध पत्नी उसका वध करना चाहती है, लेकिन सारिका उड़ जाती है और वही पर उसकी भूमिका समाप्त हो जाती है।

(2) अन्य पात्रों की सामान्य संगणना :

"शुकसप्तति" की आमुख कथा में इन तीन पात्रों का वर्णन प्राप्त होता है। साथ ही शुक द्वारा प्रभावती के प्रति कही गई अन्य सत्तर कथाओं में भी अनेक प्रकार के पात्र दृष्टिगत होते हैं। इन कथाओ में हमें समाज के सभी वर्गों के पात्रों का आचरण देखने का सुअवसर प्राप्त होता है। राजवर्गीय, प्रजा वर्गीय और आर्षवर्गीय पात्र भी

दृष्टिगत होते है। विभिन्न रग–रूप, वेशभूषा, आकृति और आचरणों **वाले** पात्रों का समावेश इस कथा चक्र को और भी रोचक बना देता है। समाज के **सभी** वर्ग इन कथाओं में आते हैं। अन्य पात्रों की एक सामान्य संगणना निम्न प्रकार **है**–

(पहली कथा)

1. राजा : विक्रमसेन
2. सेठ : हरिदत्त
3. मित्र : त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण
4. हरिदत्त की पत्नी का नाम : श्रृङ्गार सुन्दरी
5. हरिदत्त के पुत्र का नाम : मदन विनोद
6. मदनविनोद की पत्नी का नाम : प्रभावती
7. प्रभावती के पिता का नाम : सोमदत्त नामक सेठ
8. नीतिनिपुण : शुक, सारिका
9. ब्राह्मण : सत्यशर्मा
10. सत्यशर्मा की पत्नी का नाम : धर्मशीला
11. सत्यशर्मा के पुत्र का नाम : देवशर्मा
12. नारायण नामक ब्राह्मण
13 धर्मव्याध नामक मास विक्रेता
14. धर्मव्याध के माता पिता
15. गुणचन्द्र नामक परपुरुष :
16. राजा : भीम
17. सेठ : मोहन
18. सेठ का पुत्र : सुधन
19. नगर निवासी : हरिदत्त

20. हरिदत्त की पत्नी : लक्ष्मी

21. दूती : पूर्णा

(दूसरी कथा)

1. राजा : नन्दन
2. राजा का पुत्र : राजशेखर
3. रानी : शशिप्रभा
4 धनसेन का पुत्र : वीर
5. धनसेन की पत्नी : यशोदेवी
6. परपुरुष : निःशङ्क, सशङ्क

(तीसरी कथा)

1. राजा : सुदर्शन
2. बनिया : विमल
3. विमल की पत्नी : 1- रुक्मिणी
   2- सुन्दरी
4. धूर्त : कुटिल
5 मुख्यमंत्री, नगरपाल, बनियो का समुदाय भृत्यवर्ग आदि।

(चौथी कथा)

1. सोम शर्मा नामक एक विद्वान धार्मिक ब्राह्मण
2. सोम शर्मा की पुत्री : विषकन्या
3. मूर्ख निर्धन ब्राह्मण : गोविन्द
4. विष्णु नामक ब्राह्मण :
5. ग्रामाधिप :
6. मन्त्री :

(पॉचवी कथा)

1. राजा : विक्रमादित्य
2. राजा की पत्नी : कामलीला
3. पुरोहित :
4. ब्राह्मण की पुत्री : बालपण्डिता

(छठीं कथा)

1. वणिक् पुत्र : सुमति
2. उसकी पत्नी : पद्‌मिनी
3. सखी : मन्दोदरी

(सातवीं कथा)

1. राजा : वीर
2. ब्राह्मण : केशव
3. योगीन्द्र :
4. वेश्या : स्थगिका

(आठवीं कथा)

1 राजा : त्रिविक्रम
2. वणिक् : सुन्दर
3. उसकी पत्नी का नाम : सुभगा
4. वणिक् पुरूष :

(नवीं कथा)

1. मन्त्री : पुष्पहास
2. बालपण्डिता :
3. मन्त्री की पत्नी :
4. रानी :

(दसवीं कथा)

1. गृहस्थ : देवसाख्य
2. देवसाख्य की पत्नियाँ : श्रङ्गारवती और सुभगा
3. उपपति :

(ग्यारहवीं कथा)

1. मुखिया : विलोचन
2. विलोचन की पत्नी : रम्भिका
3. पथिक : ब्राह्मण

(बारहवीं कथा)

1. धनी कुम्भार :
2 कुम्भार की पत्नी : शोभिका
3. उपपति :

(तेरहवीं कथा)

1 वणिक् :
2. वणिक् पत्नी, : राजिका
3. उपपति :

(चौदहवीं कथा)

1. वणिक् : धनपाल
2. वणिक् पत्नी का नाम : धनश्री
3. उपपति :

(पन्द्रहवीं कथा)

1. वणिक्	: शालिग
2. वणिक् पत्नी	: जयिका
3. वणिक् पुत्र	: गुणाकार
4. गुणाकर की पत्नी	: श्रिया देवी
5 द्वितीया वणिक्	: सुबुद्धि

(सोलहवीं कथा)

1. वणिक्	: जनवल्लभ
2. वणिक् पत्नी,	: मुग्धिका
3. उपपति	:

(सत्रवीं कथा)

1. ब्राह्मण	: यायजूक
2. उसकी पत्नी	: पाहिनी
3. ब्राह्मण पुत्र	: गुणाढ्य
4. मदना वेश्या	
5. कुटनी	

(अट्ठारहवीं कथा)

1. वणिक् (बनिया)	: दरिद्र
2. चोर	:
3. राजा	:

(उन्नीसवीं कथा)

1. राजा	: गुणप्रिय
2. सेठ	: सोढाक

3. सेठ की पत्नी : सन्तिका

4. दूसरे बनिया की पत्नी : स्वच्छन्दा

5 मनोरथ नामक यक्ष

(बीसवीं कथा)

1. धनी किसान : सूर

2. किसान की पत्नी : केलिका

3. सिद्धपुर में रहने वाला ब्राह्मण :

4. दूती

(इक्कीसवीं कथा)

1. राजा : हेमप्रभ

2. मन्त्री : श्रुतशील

3. सेठ : यशोधर

4. सेठ की पत्नी : मोहिनी

5. सेठ की पुत्री : मन्दोदरी

6. वणिक् : श्रीवत्स

7. कुटनी

8. राजपुत्र

(बाईसवीं कथा)

1. किसान : सोढाक

2. किसान की पत्नी : माढुका

3. उपपति : सुरपाल

4. धूर्त : मूलदेव

(तेईसवीं कथा)

1. राजा : सुदर्शन
2. रानी : श्रृङ्गार सुन्दरी
3. वणिक् : चन्द्र
4. पत्नी : प्रभावती
5. पुत्र : राम

(चौबीसवीं कथा)

1. बढई : सूरपाल (धनिक)
2. बढ़ई की पत्नी : सज्जनी
3. उपपति : देवक

(पच्चीसवीं कथा)

1. बौद्ध संन्यासी : सिद्धसेन
2. जैन साधु :
3. बौद्ध भिक्षुक :
4. वेश्या :

(छब्बीसवीं कथा)

1. राजपुत्र : क्षेमराज
2. क्षेमराज की पत्नी : रत्ना देवी
3. ग्रामाध्यक्ष : देवसाख्य
4. देवसाख्य का पुत्र : धवल
5. राजपुत्र

(सत्ताईसवीं कथा)

1. वणिक् : आर्य
2. वणिक् पत्नी : मोहिनी
3. धूर्त : कुमुख

(अट्ठाईसवीं कथा)

1. गृहस्थ : महामूर्ख जरसाख्य
2. जरसाख्य की पत्नी : देविका पुँश्चली
3. ब्राह्मण : प्रभाकर

(उन्तीसवीं कथा)

1. वणिक् : महाधन
2. वणिक् पत्नी : सुन्दरी
3. उपपति : मोहन
4. मन्त्रवेत्ता

(तीसवीं कथा)

1. पिशाच : कराल एव उत्ताल
2. कराल की पत्नी : धूमप्रभा
3. उत्ताल की पत्नी : मेघप्रभा
4. धूर्तराज : मूलदेव

(इकत्तीसवीं कथा)

1. सिह : पिङ्गल
2. धूर्त खरगोश
3. बहुत से पशु

(बत्तीसवीं कथा)

1. सेठ : माधव
2. सेठ की पत्नी : मोहिनी
3. सेठ का पुत्र : सोहड
4 सोहड की पत्नी : राजिनी
5. उपपति
6. सास

(तैंतीसवीं कथा)

1. माली : शंकर
2 माली की पत्नी : रम्भिका
3. चार उपपति : ग्राममुख्य, वणिक्पुत्र, अकरक्षक, सेनाध्यक्ष

(चौतीसवीं कथा)

1. विप्र : शम्भु
2. सुन्दर बालिका
3. ग्रामवासी

(पैंतीसवीं कथा)

1. बनिया : शम्बक
2. बर्तन बेचने वाला बनिया
3. बनिया की पत्नी : सत्यंकार
4. वणिक्पुत्र

(छत्तीसवीं कथा)

1. ग्रामाध्यक्ष : शूरपाल
2. ग्रामाध्यक्ष की पत्नी : नायिनी
3. ग्रामवासी

(सैंतीसवीं कथा)

1. गृहपति : शूर
2. हलवाहा : पूर्णपाल
3. शूरपति की पुत्री : सुभगा

(अड़तीसवीं कथा)

1. विप्र पथिक : प्रियंवद
2. बनिया
3. बनिया की पत्नी : पुँश्चली

(उनतालीसवीं कथा)

1. वणिक् : भूधर
2. द्वितीय बनिया
3. भूधर पुत्र
4 राजा
5 मन्त्री

(चालीसवीं कथा)

1. दो मित्र : सुबुद्धि, कुबुद्धि
2. सुबुद्धि की पत्नी

(इकतालीसवीं कथा)

1. राजा : शत्रुमर्दन
2. राजा की पुत्री : मदनरेखा
3. ब्राह्मण स्त्री
4. मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण
5. राजपुरुष

(बयालीसवीं कथा)

1 राजपूत : राजसिंह
2. राजपूत की पत्नी : कलहप्रिया
3. राजपूत के दो पुत्र :
4. बाघ

(तैंतालीसवीं कथा)

1. भयातुर : व्याघ्र
2. धूर्त : श्रृगाल
3. धूर्त स्त्री

(चौवालीसवीं कथा)

1. इच्छुक : बाघ
2. सियार

(पैंतालीसवीं कथा)

1. राजा : अरिन्दम
2. रतिलोलुप ब्राह्मण : विष्णु
3. गणिका : रतिप्रिया
4. कुटनी

(छियालीसवीं कथा)

1. विद्वान दरिद्र ब्राह्मण
2. ब्राह्मण की पत्नी : करगरा
3. भूपति : मदन
4. भूपति की पुत्री : मृगलोचना

(सैंतालीसवीं कथा)

1. करगरा का पति केशव
2. राजकन्या
3. राजा : शत्रुघ्न
4. रानी : सुलोचना
5. राजा : मदन

(अड़तालीसवीं कथा)

1. चक्रवर्ती राजा : नन्द
2. राजा का मुख्य सचिव : शकटाल
3. बङ्गाल के राजा
4. छली दूत

(उनचासवीं कथा)

1. बङ्गाल के राजा
2. दूत
3. राजा नन्द
4. मन्त्री शकटाल
5. बनिया, पण्डित आदि

(पचासवी कथा)

1. दो मित्र : धर्मबुद्धि एव पाप बुद्धि
2. मन्त्री
3. दुष्टबुद्धि के पिता
4. कौतुकाकृष्ट लोग

(इक्यावनवीं कथा)

1. ब्राह्मण : बल्लभीनाथ
2. लॅगडा ब्राह्मण : गाङ्गिल
3. चोरों का समुदाय

(बावनवीं कथा)

1. राजा : सत्वशील
2. राजा का पुत्र : दुर्दमन
3. मित्र : ब्राह्मण, बढई, वणिक पुत्र आदि
4 राजा : नीतिसार
5. मन्त्री : बुद्धिसार

(तिरपनवीं कथा)

1. दोहड नामक चमार
2. चमार की पत्नी : देविका
3. उपपति

(चौवनवीं कथा)

1. राजा : धर्मदत्त
2. मन्त्री : सुशील
3. मन्त्री पुत्र विष्णु
4. शत्रुदमन नामक राजा

(पचपनवीं कथा)

1. ब्राह्मण : श्रीधर
2. चमार : चन्दन
3. ग्रामपाल :
4. राजा

(छप्पनवीं कथा)

1. बनिया : सान्तक
2. चोरो का समूह

(सत्तावनवीं कथा)

1. राजा : विक्रमार्क
2. रानी : चन्द्रलेखा
3. राज पण्डित : शुभंकर
4. दासी

(चौसठवीं कथा)

1 राजपूत	:	सोमराज
2. सोमराज की पत्नी	:	मण्डुका
3. मण्डुका	:	
4. सखी	:	देविका

(पैंसठवीं कथा)

1. राजा	:	नन्दन
2. साधु	:	श्रीवत्स
3. अन्य साधु	:	

(छाछठवीं कथा)

1. हंसराज	:	हसधवल
2. शिकारी	:	
3. अन्य हस	:	

(सङसठवीं कथा)

1. बौना वानर	:	वनप्रिय
2. घडियाल	:	
3. मगर की प्रिया	:	शुभंकर

(अड़सठवीं कथा)

1. ब्राह्मण	:	केशव
2. बनिये की पुत्री	:	
3. राजा	:	
4. ब्राह्मण मित्र	:	वितर्क

(उनहत्तरवीं कथा)

1. बनिया :
2 बनिया की पत्नी : वेजिका
3. उपपति : शुभकर

(सत्तरवीं कथा)

1. मदनविनोद
2. प्रभावती
3. मदन नामक गन्धर्व
4. रत्नावली
5. मदनमञ्जरी
6. नारद जी
7. कनकप्रभ नामक गंधर्व
8 विद्याधर

* * * * *

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS

पंचम अध्याय

कलापक्ष

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS

कला-पक्ष

कलात्मक पक्ष की दृष्टि से शुकसप्तति अपने युग की एक सशक्त रचना है। कथा कौशल की दृष्टि से यह ग्रन्थ अपना निजी वैशिष्ट्य रखता है। कवि ने कथाओ को अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु प्रत्येक कथा के प्रारम्भ में तत्कथाविषयक पद्य की रचना की है जिसके कारण श्रोता कौतूहल–वश वक्ता से उस कथा को सुनने का आग्रह करता है और इस प्रकार कथा आरम्भ हो जाती है। कथाओं को और अधिक रोचक और गति प्रदान करने के लिए एवं ग्रन्थकार ने अपनी काव्य प्रवृत्ति को सतुष्टि करने के लिए जहॉ गद्य से काम चल सकता था वहॉ पद्य का प्रयोग किया है। पद्यो का प्रयोग कवि के बौद्धिक ज्ञान का परिचायक है किन्तु यह पद्य अत्यन्त सरल एवं सरस है और कथा गति प्रवाह को अविच्छिन्न गति प्रदान करने में गद्य के समान ही सहायक सिद्ध होते है।

(अ) भाषा :

जैसाकि स्पष्ट है शुकसप्तति में गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त गद्य सरलतम शैली मे लिखा गया है जिसके अन्तर्गत वाक्य अत्यन्त छोटे–छोटे होते हैं बोलचाल के रूप में भाषा का सामान्य ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी सरलता और सहजतापूर्वक कथाओ को समझने में समर्थ हो जाता है। सूक्त्यामक गद्य एव नीतिपरक पद्य पाठक या श्रोता को हठात् आकर्षित करते हैं। यत्र–तत्र प्रकृति वर्णन आदि को लेकर अनावश्यक विस्तार भी मिलता है। कहीं–कहीं व्याकरण का भी अशुद्ध प्रयोग प्राप्त होता है। जैसे–पति शब्द का पतिना सप्तम्यन्त पतौ ये व्याकरण सम्मत नही है। इसी प्रकार 'अनुत्पाटयित्वा' के स्थान पर अनुत्पाटय होना चाहिए क्योंकि संस्कृत में नियम है कि यदि धातु के पहले उपसर्ग आ जाय तो 'क्त्वा' प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता बल्कि 'ल्यप' प्रत्यय अवश्य आ जायेगा। इसी प्रकार–'हस्तपादौ' के स्थान पर हस्तपादम् एकवचान्त होना चाहिजए। 'सहामि' पद प्राकृत में

उत्तमपुरूषैकवचनान्त होता है और संस्कृत मे वही आत्नेपद होने के कारण 'सह्' धातु का 'सहे' रूप होना चाहिए। कहीं—कहीं पर भाषा की प्राकृत क्रिया का भी प्रयोग किया गया है जैसे—अढण्ढोलयत् 'ढोलना' शब्द लङ्लकार का रूप है फिर भी समान रूपेण यह ग्रन्थ भाषा की दृष्टि से सरल, रोचक एवं ग्राह्य है।

(ब) शैली :

इसकी शैली रोचक और आकर्षक है। वक्ता तोता स्त्रियों के दुराचार, पर—पुरूष गमन, त्रिया चरित और वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद आदि के अनेक उदाहरण देकर पर—पुरूष गमन के दोषो का विस्तृत वर्णन करता है। इसमें बीच—बीच में संस्कृत और प्राकृत के उपदेशात्मक पद्य भी है। शुकसप्तति में गद्य और पद्य सर्वत्र वैदर्भी शैली में प्रयुक्त है यही कारण है कि भाषा सहज बोधगम्य है। दीर्घकाय समासों का प्रायः अभाव है। छोटे—छोटे समासों का प्रयोग भाषा की श्रीवृद्धि करने में "सोने में सुहागे" का काम करते हैं। वैदर्भी शैली रस और भावाभिव्यक्ति भावों को अभिव्यक्त करने के लिये सर्वाधिक लोकप्रिय शैली मानी जाती है। इसी शैली का प्रयोग कर कालिदास और अश्वघोष आदि अमर हो गये। शुकसप्तति भी वैदर्भी शैली का एक अनुपम ग्रन्थ है।

(स) रस :

रस—सिद्धान्त भारतीय काव्य मनीषियों एवं कालविदों की महत्तम उपलब्धि है। रस शब्द मात्र से ही भारतीय मनीषा तथा कलाकार की हृत्तन्त्री झटरित होकर आनन्दोल्लास की तरगें से मुखरित हो उठती है।

रस-शब्द का अर्थ :

भारतीय वाङ्मय में रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। ऐतिहासिक कालक्रमेण रस का अर्थ वैदिककाल से प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में यह शब्द किसी वस्तु के सार के लिए प्रयुक्त हुआ था और क्रमशः इस शब्द से भाव, सुख और आनन्द का

बोध होने लगा। इस प्रकार आध्यात्मिक जगत मे जो 'ब्रह्मानन्द' का वाचक था, वही काव्य जगत् में 'ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यतत्व' का वाचक हो गया।

रस की परिभाषा :

भिन्न–भिन्न काव्यशास्त्रियो ने रस की परिभाषा भिन्न–भिन्न प्रकार से की है। भरत का प्रसिद्ध रससूत्र "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"[1] रस की परिभाषा के रूप में सर्वत्र उद्धृत किया जाता है। यद्यपि भरत के सूत्र मे रस की परिभाषा नहीं अपितु रस की प्रक्रिया की ओर संकेत मिलता है, किन्तु अधिकांश काव्यशास्त्री, रस की परिभाषा के रूप मे इसी सूत्र को उद्धृत करते हैं। अतएव यह सूत्र रस–सिद्धान्त का मूल बीज बन गया है। अस्तु।

काव्य प्रकाशकार–आचार्य मम्मट ने रस के स्वरूप को इस प्रकार बताया है–'लोक में रति आदि रूप स्थायी भाव के जो कारण, कार्य और सहकारी होते हैं वे यदि नाटक या काव्य मे प्रयुक्त होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं और उन विभाव (आलम्बन या उद्दीपन) आदि रूप कारण, कार्य तथा सहकारियो के योग से व्यक्त वह (रति आदि रूप) स्थायी भाव रस कहलाता है।[2]

इस प्रकार भारतीय वाङ्मय में 'रस' की परिभाषा द्विविध हो सकती है। जो आचार्य रस को विषयगत् या काव्य सौन्दर्य मानते हैं– उनके अनुसार नाट्यसौन्दर्य या काव्य सौन्दर्य ही रस है। उसकी अनुभूति सामाजिक या पाठक को हर्षादि अनुभूतियों के रूप मे होती है। नाट्याचार्य भरत, अलङ्कारवादी भामह, रीतिवादी वामन एवं दण्डी तथा वक्रोक्तिवादी कुन्तक के अनुसार रस का यही स्वरूप हो सकता है। इन आचार्यो के अनुसार रस आस्वाद्य है।

---

1 काव्यप्रकाश, चतुर्थउल्लास, पृष्ठ स० 100 –
आचार्यमम्मट

2 कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाटयकाव्ययोः।
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रस स्मृत ।।
काव्यप्रकाश, चतुर्थउल्लास, सूत्र स० 43, पृष्ठ स० 95 – आचार्य मम्मट

जो आचार्य रस को विषयिगत मानते है, वे रस को वस्तु में नहीं अपितु व्यक्ति की चेतना मे स्थापित करते हुए नाट्य.सौन्दर्य या काव्य सौन्दर्य जनित आनन्दानुभूति को ही रस की सज्ञा देते है। आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, विश्वनाथ तथा पंडित राजजगन्नाथ आदि आचार्यों को रस का यही स्वरूप मान्य है इस प्रकार आनन्दवर्धन से लेकर अद्यतन यही परिभाषा रस विश्वजनीन–सी हो गयी है। इनके अनुसार रस स्थायीभाव का आनन्दमय आस्वाद्य रूप है।

रस के अंङ्ग :

रस के प्रमुख तीन अंङ्ग हैं–विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारीभाव इन सबके सामान्य गुण–योग से ही रस–निष्पत्ति सम्भव वताई गयी है।[1]

1- विभाव : लोक मे प्रचलित हेतु, कारण अथवा निमित्त शब्दों के लिए रस शास्त्र में पृथक रूप से 'विभाव' शब्द को ग्रहण किया जाता है। शास्त्र में वाचिक, आङ्गिक एव सात्विक अभिनय के सहारे चित्तवृत्तियों का विशेष रूप से विभावन अथवा ज्ञापन कराने वाले हेतु, कारण अथवा निमित्त को विभाव कहते हैं। 'विभावन' का अर्थ केवल ज्ञापन नहीं अपितु उसका अर्थ आस्वाद योग्यता तक पहुँचाना भी है। अतएव हम कह सकते हैं कि विभाव वासना–रूप में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से अवस्थित रति आदि स्थायी भावों को आस्वाद योग्य बनाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं– आलम्बन, उद्दीपन। चित्तवृत्ति–विशेष के विषयभूत विभाव को आलम्बन कहते हैं और उस निमित्त रूप सामग्री को जिससे जागृत भाव अधिकाधिक उद्दीप्त होता है–उद्दीपन विभाव कहते हैं।[2] आलम्बन के दो भेद होते हैं–विषय तथा आश्रय, इत्यादि भावों के जागृत होने के कारण–स्वरूप विभाव ही विषय कहलाते हैं तथा जिस व्यक्ति में स्थायीभाव जागरित होते हैं, वह उनका आश्रय होने से आश्रय कहलाता है।[3]

---

1 नाट्यशास्त्र, पृष्ठ–80

2 रसगङ्गाधर, पृ० 33

3 सा० कौ०, पृ० 29

2- अनुभाव : भावजागर्ति के पश्चात होने वाले अङ्ग–विकारों को अनुभाव कहते हैं। इनकी व्युत्पत्ति के अनुसार (अनु पश्चाद् भावः उत्पत्तिः, येषाम् अथवा अनुपश्चाद् भावो यस्य सोऽनुभावः) स्थायीभावों के जागरित होने के पश्चात् उत्पन्न होने के कारण इन्हे कार्यरूप ही मानना चाहिए।[1] आचार्य विश्वनाथ ने रसोद्बोध की दृष्टि से विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारी तीनों को ही कारण माना है।[2] पण्डितराज जगन्नाथ भी रस की अनुभावना कराने वाले कारणों को अनुभाव कहते हैं।

व्यभिचारीभाव :

व्यभिचारी शब्द मे वि+अभि+चर् धातु का योग दिखाई पडता है । अतएव वाक्, अङ्ग सत्वादि द्वारा विविध प्रकार के रसानुकूल संचरण करने वाले भावों को व्यभिचारी अथवा संचारी भाव कहते है।[3] व्याभिचारी भाव स्थायी भाव के परिपोषक तथा उन्हें रसावस्था तक पहुॅचाने वाले होते हैं, अस्थिरता उनका विशेषगुण है। स्थायी भाव के साथ इनका सम्बन्ध वारिधि के साथ कल्लोलों का सा है। उनका आविर्भाव–तिरोभाव होता रहता है।[4] इसलिए उन्हें अचिर, अनवस्थित, जन्म वाला तथा संचारी भी कहते हैं। स्थायित्व के सहायक मात्र कहे जा सकते हैं। 'काव्य प्रकाश' ने स्पष्टतः इन्हें स्थायीभाव का सहकारी कहा है।[5] इनकी संख्या तैंतीस मानी गयी है।[6]

स्थायीभाव :

स्थायी भाव मानव–मन की सूक्ष्म कृतियो से सम्बन्धित अथवा वासना रूप से प्रमाता के चित्त में सदैव रहने वाले भावों को कहते हैं। कारण के अनुपस्थित रहने पर भी स्थायीभाव की सत्ता रहती है, जबकि शेष भाव कारण के अभाव में निश्शेष हो

---

1 सा० द०, पृ० 3/132-33
2 सा० द०, पृ० 3/14
3 ना०सा०चौ०,पृष्ठ 84
4 दाशरूपक 4/7
5 काव्य प्रकाश, 4/27-28, सूत्र 43
6 काव्य प्रकाश पेज स०–100, चतुर्थउल्लास

जाते है। काव्य में स्थायी भाव ही अनुकूल विभाव–अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस रूप प्राप्त करने में समर्थ होता है।

स्थायी भाव अपने विरोधी अविरोधी किसी भी भाव से नष्ट नहीं होते।[1] ये स्वयं दूसरे भावो को अपने में अन्तर्हित कर लेते हैं। अन्य भावों को अपने वशवर्ती कर लेते हैं। इनमे चिरकालस्थायित्व, आप्रबन्ध–स्थायित्व अथवा अविच्छिन्न प्रवाहमयता होती है। स्थायीभाव चर्वणीय एवं आनन्ददायी होते है। स्थायी भाव की वासनारुपता के सम्बन्ध में अभिनवगुप्त ने सर्वप्रथम विचार किया, जिसका अनुसरण परवर्ती आचार्यों ने किया । भरत ने इनकी संख्या आठ मानी[2], कालान्तर में इनकी संख्या नौ दस तक पहुँच गयी। इनके नाम हैं– रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, निर्वेद।[3]

शुकसप्तति में अंङ्गीरस :

शुकसप्तति कथाग्रन्थ श्रृंङ्गर रस से परिपूर्ण कथाग्रन्थ है। जिसमें श्रृङ्गार के दोनो भेद सयोग और विप्रलम्भ का स्वरूप प्राप्त होता है।

साहित्य शास्त्र के आचार्यो ने श्रृंङ्गार को श्रेष्ठ तथा अधिक व्यापक स्वरूप में स्वीकार किया है।[4] आनन्दर्धन ने भी उसे मधुर रस माना है। (श्रृंङ्गर एव मधुरः परः प्रह्लादनोरसः) श्रृङ्गार रस दो प्रकार का होता है– संयोग[5] तथा विप्रलम्भ[6] मम्मट ने भी श्रृङ्गार के दो भेद–माने हैं– 1. सम्भोग श्रृंङ्गार 2. विप्रलम्भ श्रृंङ्गार।[7] किन्तु दोनों ही अवस्थाओ मे इसका स्थायीभाव रति ही है, जो विभावानुभाव तथा व्यभिचारी भाव से

---

1 दशरूपक 4/34 सा० द० 3/174, रस०ग०पृ० 31

2 अष्टौ नाट्ये रसा· स्मृता । नाट्य द०

3 रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भय तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावा प्रकीर्तिता ।
काव्यप्रकाश, पेज सं० 96, सूत्र संख्या 45

4 ना०शा०, 6/45, पृ० 300

5 सा०द०, 3/290, पृ० 148

6 सा०द०, 3/187, पृ० 233

7 काव्य प्रकाश पेज स०–121, चतुर्थउल्लास

पुष्ट होकर श्रृङ्गार रस–रूप में प्रतिफलित होता है। नायक–नायिका परस्पर इसके आश्रय एवं आलम्बन होते हैं। उनके परस्पर दर्शन, कटाक्ष, प्रस्वेद, रोमांच, आश्रु, भ्रूविक्षोपादि आङ्गिक व्यापार अनुभाव कहे जाते हैं। इसमे तैंतीस व्यभिचारी भाव होते हैं।

आरम्भ में ही शुकसप्तति मे विप्रलम्भ श्रृङ्गार का वर्णन कवि ने किया है। 'काव्यानुशासन' के अनुसार विप्रल्लभ श्रृङ्गार की निरूक्ति इस प्रकार है– 'सम्भोगसुखास्वादलोभेन विशेषेण प्रलभ्यते आत्माऽत्रोति विप्रलम्भ.।' तात्पर्य यह है कि नायक–नायिका के परस्परनुराग मे मिलन नैराश्य ही विप्रलम्भ है। इसीलिए नाट्यदर्पणकार कहते है– 'परस्परानुरक्तयोरपि विलासिनोः पारतन्त्रयोदर घटनं चित्तविश्लेषणे वा विप्रलम्भः' । आचार्य विश्वनाथ विप्रलम्भ के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते है– इसमें नायक–नायिका का परस्परानुराग हुआ करता है, किन्तु परस्पर मिलन नहीं होने पाता।[1]

वियोग मे रति का भाव लगा रहता है और यही रति भाव विप्रलम्भ श्रृंङ्गार को करूण से भिन्न बनाता है। पुनर्मिलन की आशा वियोग में संयोग का सुख–स्वप्न दिखाती है। संयोग मे जो आनन्द प्रियजन के मिलन से होता है, वह वियोग मे प्रियजन के चिन्तन तथा गुणकथनादि के माध्यम से होता है। इसमें प्रतिक्षण नायक का स्मरण होता रहता है। इस स्मरण जन्य संयोग में जो सुख है, वह उसे प्रत्यय–सयोग से भी अधिक श्रेष्ठता देता है। इसमें गुरूजनों की लज्जा का न भय है, न वियोग की उत्साह–शून्य करने वाली शंङ्का। इसीलिए लोग वियोग को सुखद माना करते है।[2] यदि वियोग में यह सुख न होता तो दुःख सहकर भी प्राणी वियोग में मग्न क्यो रहते है?

विप्रलम्भ श्रृंगार के चार भेद हैं– पूर्वराग, मान, प्रवास, करूण।[3]

---

1 सा०द०, 3/187
2 कबीर
3 सा०द०, 3/187, पृ० 232

आचार्य मम्मट ने विप्रलम्भश्रृङ्गार को अभिलाष, ईर्ष्या, विरह, प्रवास, तथा, शाप, पॉच, प्रकार का माना है।[1] जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि मुख्य कथा शुकसप्तति के अन्तर्गत प्रवास विप्रलम्भ का दिग्दर्शन हुआ है। मदनविनोद और प्रभावती की इस कथा मे आश्रय प्रभावती ओर आलम्बन मदनविनोद है, पत्नी को विदेश छोडकर जाना उद्दीपन विभाव है, प्रभावती का उदास रहना, चिन्ता करना, कुमार्ग पर जाने के लिए उद्यत होना आदि अनुभाव हैं, चिन्ता, दैन्य, चपलता मोह आदि व्यभिचारी भाव हैं।

शुकसप्तति के अधिकाश कथाओं में मुख्य रूप से संयोग श्रृङ्गार का वर्णन कवि ने किया है। पति के कार्यवश विदेश चले जाने पर अथवा कार्यवश घर से बाहर जाने पर उनकी पत्नियॉ काम सन्तप्ता होकर व्यभिचार मार्ग का अवलम्ब लेती हैं। इसीलिये अधिकांश कथायें श्रृंङ्गारिक अनुभावों से भरी पडी हैं। इन कथाओं में कही–कहीं आश्रय, नायिका हैं और आलम्बन उपपति है तो कहीं पर पुरूष आश्रय और परकीया नायिका आलम्बन है। जैसे–

द्वितीय कथाः में वीर नामक यशोदेवी का पुत्र आश्रय है और आलम्बन शशिप्रभा है। आश्रय वीर द्वारा भोजन आदि न करना अपनी हृदय पीड़ा को माता से निवेदन करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्याभिचारीभाव है।

तृतीय कथा : में कुटिल नामक धूर्त विमल का रूप धारण करने वाला आश्रय है और आलम्बन विमल की दोनों पत्नियॉ हैं जिसे देखकर कुटिल धूर्त के हृदय में कामभावना जागृत होती है। धूर्त विमल का दोनों पत्नियों के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव है।

चतुर्थ कथा : में शूर विष्णु नामक ब्राह्मण आश्रय है और गोविन्द नामक मूर्ख की पत्नी विषकन्या आलम्बन है, जिसे देखकर विष्णु के हृदय में काम भावना जागृत

---

1 अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पऽ्चविधः।
काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ० 123 ।

होती है। विष्णु का विषकन्या के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव है।

दशमकथा : में उपपति आलम्बन है और देवसाख्य की दोनों पत्नियाँ श्रृंङ्गारवती और सुभगा आश्रय हैं। उपपति को देखकर देवसाख्य की पत्नियो के ह्रदय में कामभावना जागृत होती है। श्रृङ्गारवती और सुभगा का उपपति के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

एकादशी कथा : में रम्भिका आश्रय है और ब्राह्मण पुत्र आलम्बन है, जिसे देखकर परपुरूष मे आसक्त रहने वाली रम्भिका के ह्रदय में कामभावना जागृत होती है। रम्भिका का परपुरूष से सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

द्वादशी कथा : में कुम्हार की स्त्री शोभिका आश्रय है और उपपति आलम्बन है जिसे देखकर परपुरुष में आसक्त रहने वाली शोभिका के हृदय में कामभावना जागृत होती है। शोभिका का परपुरूष के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

त्र्योदशी कथा : मे वणिक् पत्नी राजिका आश्रय है और उपपति आलम्बन है। उपपति को देखकर राजिका के हृदय मे कामभावना जागृत होती है। उपपति के साथ राजिका का सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

चतुर्दशी कथा : मे धनश्री आश्रय है और पर पुरूष आलम्बन परपुरूष को देखकर धनश्री के हृदय मे काम भावना जागृत होती है। धनश्री का परपुरूष के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

पञ्चदशी कथा : में गुणाकर की पत्नी श्रिया देवी आश्रय है और सुबुद्धि नामक वणिक् आलम्बन है। वाणिक् को देखकर श्रियादेवी के ह्रदय में कामभावना जागृत होती है और श्रिया देवी का सुबुद्धि के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

षोडशी कथा : में जनवल्लभ वणिक् की पत्नी मुग्धिका आश्रय है और परपुरूष आलम्बन है। परपुरूष को देखकर मुग्धिका के हृदय में कामभावना जागृत होती है और मुग्धिका का परपुरूष के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

त्र्योदशी कथा : में वणिक् पत्नी स्वच्छन्दा आश्रय है और सोढाक नामक सेठ आलम्बन है। सोढाक को देखकर स्वच्छन्दा के ह्रदय में कामभावना जागृत होती है और स्वच्छन्दा का सोढाक के साथ संभोग करना आदि अनुभाव है चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव है।

बीसवीं कथा : मे सूर नामक किसान की पत्नी केलिका आश्रय है और ब्राह्मण आलम्बन। ब्राह्मण को देखकर केलिका के ह्रदय ने काम भावना जागृत होती है और केलिका का ब्राह्मण के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

इक्कीसवीं कथा : में वणिक् पत्नी मन्दोदरी आश्रय है और राजपुत्र आलम्बन। राजपुत्र को देखकर मन्दोदरी के ह्रदय मे कामभावना जागृत होती है। राजपुत्र के साथ मन्दोदरी का सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

बाईसवीं कथा : में किसान की पत्नी माढुका आश्रय हैं और सूरपाल आलम्बन। सूरपाल को देखकर माढुका के ह्रदय में काम भावना जागृत होती है। सूरपाल का माढुका के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

तेईसवीं कथा : में बणिक् पुत्र राम आश्रय है। कलावती नामक वेश्या आलम्बन। कलावती को देखकर राम के ह्रदय में कामभावना जागृत होती है और राम का कलावती के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

चौबीसवीं कथा : मे देवक नामक पुरूष आश्रय है। धनिक की पत्नी सज्जनी आलम्बन। सज्जनी को देखकर देवक के हृदय में कामभावना जागृत होती है। देवक का सज्जनी के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष, आदि व्यभिचारीभाव हैं।

छब्बीसवीं कथा : में देवसाख्य ग्रामाध्यक्ष और पुत्र धवल आश्रय है। क्षेमराज की पत्नी रत्नादेवी आलम्बन है। रत्नादेवी को देखकर उन दोनो के हृदय में कामभावना जागृत होती है। उन दोनों का रत्नादेवी के घर जाना और सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

सत्ताईसवीं कथा : में वणिक् पत्नी मोहिनी आश्रय है। कुमुख नामक धूर्त आलम्बन है। कुमुख को देखकर मोहिनी के हृदय मे कामभावना जागृत होती है। मोहिनी का कुमुख के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

अट्ठाईसवीं कथा : मे प्रभाकर नामक ब्राह्मण आश्रय है। जरसाख्य की पत्नी देविका पुँश्चली आलम्बन है। देविका को देखकर प्रभाकर के हृदय में कामभावना जागृत होती है। प्रभाकर का देविका के साथ से सम्भोग करना अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

उन्तीसवीं कथा : में वणिक् पत्नी सुन्दरी आश्रय है। मोहन नामक उपपति आलम्बन है। मोहन को देखकर सुन्दरी के हृदय मे कामभावना जागृत होती है। मोहन का सुन्दरी के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव हैं। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव है।

इकतीसवीं कथा : में वीर रस का वर्णन प्राप्त होता है खरगोश आश्रय है ,पिंङ्गल नामक सिंह आलम्बन है। खरगोश का सिंह के पास जाना, सिंह को कुयें में उसकी परछाई दिखाना आदि अनुभाव है। श्रय, धृति, चपलता, आवेश आदि व्यभिचारीभाव हैं।

बत्तीसवीं कथा : में सोहड़ की पत्नी राजिनी आश्रय है। संकेत किया गया उपपति आलम्बन। उपपति को देखकर राजिनी के हृदय में कामभावना जागृत होती है राजिनी का उपपति के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव है।

चौतीसवीं कथा : में शम्भु नामक विप्र आश्रय है। खेती की रखवाली करने वाली सुन्दर बालिका आलम्बन। बालिका को देखकर शम्भु के हृदय में कामभावना जागृत होती है। शम्भु का बालिका के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

पैंतीसवी कथा : मे शम्बक नामक वणिक् आश्रय है। बर्तन बेचने वाले बनिया की पत्नी आलम्बन । वणिक् पत्नी को देखकर शम्बक के हृदय में कामभावना जागृत होती है। शम्बक का वणिक् पत्नी के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

सैंतीसवीं कथा : में सूरपति की पुत्री सुभगा आश्रय है। पूर्णपाल नामक हलवाला आलम्बन। पूर्णपाल को देखकर सुभगा के हृदय में कामभावना जागृत होती है। सुभगा का हलवाहे के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव है।

अड़तीसवीं कथा : मे प्रियंवद नामक विप्र आश्रय है। वणिक् पत्नी पुँश्चली आलम्बन। पुँश्चली को देखकर ब्राह्मण के हृदय मे कामभावना जागृत होती है। प्रियंवद का वणिक् पत्नी के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

चालीसवीं कथा . मे कुबुद्धि आश्रय है सुबुद्धि की पत्नी आलम्बन। सुबुद्धि की पत्नी को देखकर कुबुद्धि के हृदय में कामभावना जागृत होती है। कुबुद्धि का मित्र की पत्नी के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारभाव हैं।

बयालीसवीं कथा : में भय रस का वर्णन प्राप्त होता है। सिंह आश्रय है और व्याघ्रमारी आलम्बन है। डरना, भागना सिंह का व्याघ्रमारी के पास जाना आदि अनुभाव है। त्रास, आवेग आदि व्याभिचारीभाव हैं।

तैतालीसवीं कथा : में भी भय रस का वर्णन मिलता है। श्रृंगाल आश्रय है और व्याघ्रमारी आलम्बन है। आलम्बन की चेष्टायें जैसे बाघ खाने के लिये अधिक क्रोधित होना आदि उद्दीपन विभाव है। व्याघ्रमारी द्वारा बाघ खाने के लिये झपटना आदि अनुभाव है। शंका, असूया, मद, आवेग आदि व्याभिचारीभाव हैं।

पैतालीसवीं कथा : में विष्णु नामक रति लोलुप ब्राह्मण आश्रय है। रति प्रिया नामक गणिका आलम्बन। रतिप्रिया को देखकर ब्राह्मण के हृदय में कामभावना जागृत होती है। रतिप्रिया का ब्राह्मण के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव है।

तिरपनवीं कथा : में दोहड की पत्नी देविका आश्रय है। उपपति आलम्बन। उपपति को देखकर देविका के हृदय में काम भावना जागृत होती है। देविका का उपपति के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

सत्तावनवीं कथा : में राजा की पत्नी चन्द्रलेखा आश्रय है। शुभंकर नामक राजपण्डित आलम्बन। राजपण्डित को देखकर चन्द्रलेखा के हृदय में कामभावना जागृत होती है। चन्द्रलेखा का राजपण्डित के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

अट्ठावनवीं कथा : में परपुरूषों में आसक्त रहने वाली राजड पत्नी दुःशीला आश्रय है और गणेश जी आलम्बन हैं। दुःशीला द्वारा नृत्य आदि करना अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष चपलता आदि व्याभिचारीभाव हैं।

उनसठवीं कथा : में राजपूत की पत्नी रूक्मिणी आश्रय है। परपुरूष आलम्बन। परपुरूष को देखकर रूक्मिणी के हृदय में कामभावना जागृत होती है। परपुरूष के साथ रूक्मिणी का सम्भोग करना अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

इकसठवीं कथा : में वणिक् पत्नी तेजुका आश्रय है और परपुरूष आलम्बन है। परपुरूष को देखकर तेजुका के हृदय में कामभावना जागृत होती है। परपुरूष के साथ तेजुका का सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

बासठवीं कथा : में राजपूत की पत्नियाँ शोभिका और तेजिका आश्रय हैं और पर पुरूष आलम्बन है परपुरूष को देखकर दोनों के हृदय में कामभावना जागृत होती है। परपुरूष के साथ दोनों का सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव है।

चौसठवीं कथा : में सोमराज की पत्नी मण्डुका आश्रय है। परपुरूष आलम्बन है। परपुरूष को देखकर मण्डुका के हृदय में कामभावना जागृत होती है। मण्डुका का पुरपुरूष के साथ सम्भोग करना आदि अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष चपलता आदि व्यभिचारीभाव हैं।

अड़सठवीं कथा : में केशव नामक ब्राह्मण आश्रय हैं। वणिक् पुत्री आलम्बन। वणिक्–पुत्री को देखकर केशव के हृदय में कामभावना जागृत होती है। वणिक् पुत्री का केशव के ओंठ चूमना अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

उनहत्तरवीं कथा : में वणिक् पत्नी वेजिका आश्रय है उपपति आलम्बन। उपपति को देखकर वेजिका के हृदय में कामभावना जागृत होती है। उपपति के साथ वेजिका का सम्भोग करना अनुभाव है। चिन्ता, दैन्य, हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

सत्तरवीं कथा : में गन्धर्व रूप धारण करने वाला विद्याधर आश्रय है। गन्धर्व पत्नी मदनमञ्जरी आलम्बन। मदनमञ्जरी को देखकर विद्याधर के हृदय में कामभावना जागृत होती है। चिन्ता, दैन्य हर्ष आदि व्यभिचारीभाव हैं।

अन्ततोगत्वा हम यही कह सकते है कि शुकसप्तति में वर्णित 70 कहनियों में प्राय· अधिकांश कहानियाँ श्रृंङ्गार रस, विशेष रूप से संयोग श्रृंङ्गार से परिपूर्ण हैं। सिर्फ कुछ ही कथाओं में भय,वीर आदि रसों के अल्प रस का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ कहानियॉ ऐसी भी हैं। जिनमे स्पष्ट रूप से रस का चित्रण नहीं है इसलिए उन कहानियो का वर्णन नही किया गया है।

(द) अलंङ्कार :

'अलंङ्कारोति इति अलङ्कार.' अथवा 'अलंङ्क्रियते अनेन इति अलंङ्कारः' अर्थात् अलङ्कार वह है, जो किसी वस्तु की शोभा बढ़ाये अथवा जिसके द्वारा किसी वस्तु की शोभाबढाई जाये।

जिस प्रकार लोक व्यवहार में कटक, कुण्डल आदि आभूषण पुरूष या रमणी के शारीरिक शोभा को बढाकर उसके भीतरी सौन्दर्य को भी निखार देते हैं, उसी प्रकार काव्य में वर्णित अलंङ्कार कविता–कामिनी के शरीर स्थानी शब्द और अर्थ की शोभा बढाकर उसके माध्यम से काव्यात्मा रस के भी उपस्कारक होते हैं।

वस्तुत. काव्य में वर्णित अलङ्कार सम्पूर्ण काव्य के शोभावर्धक न होकर, काव्य में वर्णित, काव्य मे निहित किसी तत्व विशेष की शोभा बढ़ाते हैं। अतः आचार्य मम्मट अलंङ्कार को परिभाषित करते हुए कहते हैं–

उपकुर्वन्ति त सन्त येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।

हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।[1]

शुकसप्तति में काव्यात्मा रस के उपस्कारक रूप में अलंङ्कारों का वर्णन हुआ है। कहीं भी अलङ्कारों के अत्यधिक प्रयोग के कारण बोझिल कविता दृष्टिगोचर नहीं होती। सरल प्रवृत्ति के अलंङ्कारों का प्रयोग कर कवि ने भाषा को सहज गति प्रदान

---

1 काव्य प्रकाश, अष्टम उल्लास, सूत्र स० 87, पृष्ठ स०, 381

की है। शुकसप्तति में कहीं भी कठिन प्रकार के अलंङ्कारों का प्रयोग नहीं हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, मालादीपक, निर्दशना, प्रतिवस्तूपमा आदि सरल प्रवृत्ति के अलंङ्कारों का वर्णन मिलता हैं।

उपमा का लक्षण -

साधर्म्यमुपमा भेदे।[1]

उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्यका वर्णन उपमा कहलाता है।

शुकसत्पत्ति में उपमा :

शुकसप्तति में यूँ तो उपमा का प्रयोग पग–पग पर हुआ है। सामान्य से सामान्य बात को भी व्यक्त करने के लिए कवि ने उपमा का आश्रय लिया है किन्तु उन कथनो में उपमा का कोई विशेष सौन्दर्य लक्षित नही होता है। अतएव कुछ विशेष उदाहरण दिये जा रहे हैं जिनमें यत्किंञ्चत् उपमा का सौन्दर्य दर्शनीय है–

भोगिनः कञ्चुकासक्ताः क्रूराः कुटिलगामिनः ।
दुःखोसर्पणीयाश्च राजानो भुजगा इव।[2]

भोगी (1. भोग भोगने वाले, 2- फणवाले), कञ्चुक (1. कवच 2. केचुल) से आवृत, क्रूर, कुटिलगामी (1. कुटिलतापूर्वक व्यवहार करने वाले 2. टेढ़े चलने वाले) राजा, सर्पो के समान बडी कठिनाई से प्रापणीय (अनुकूल) होते हैं।

गच्छ देवि न ते दोषो गच्छन्त्या. परवेश्मनि।
यदि काचिच्छरीरे ते बुद्धिः सर्षपचौरवत्।[3]

देवि जाओ। पराये घर जाने में तुम्हें दोष नहीं लगेगा किन्तु यदि तुममें उस सरसों चुराने वाले के समान बुद्धि हो।

---

1 काव्य प्रकाश दशम् उल्लास, सूत्र स० 124, पृष्ठ स० 443
2 शुकसप्तति., श्लोक सं० 35, पृष्ठ सं० 33
3 शुकसप्तति:, श्लोक सं० 115 पृष्ठ स० 97

शशिना हरिणा चैव बलिना कुशभूभुजा।

कुशशक्तिच्छलत्यागसम्पद्यस्य न खण्डयते।[1]

चन्द्रमा, विष्णु, बलि और राजा कुश क्रमश. जिसकी शीतलता, छल,त्याग और सम्पत्ति को खण्डित नहीं करते अर्थात् शीतलता में वह चन्द्रमा के समान, छल में विष्णु के समान, त्याग में बलि के समान और सम्पत्ति में राजा कुश के समान था।

प्राचीमुखे विभातीन्दुरूदयाद्रिशिर. स्थितः।

द्वीपस्त्रिभुवनस्येव प्रच्छन्नस्य तमिस्त्रया।[2]

पूर्व दिशा मे उदयाचल के अग्रभाग पर स्थित चन्द्रमा अन्धकाराच्छन्न त्रिभुवन का दीप सा शोभित हो रहा है।

कहीं—कहीं पात्रों के गुणों का वर्णन करने के लिए कवि ने उपमा का सहारा लिया है जैसे—

किं तस्य वर्ण्यते राज्ञः प्रजापालनशालिनः।

यस्मिॅल्लोके न दृष्टा हि दोषा रविकरैरिव।[3]

उस प्रजापालक राजा का क्या वर्णन करें? जिसके लोक में शासन करते समय दोष नही दिखाये देते, जैसे सूर्य—किरणो से रात लुप्त हो जाती है।

व्रज देवि न तेऽयुक्तं व्रजनं गजगामिनी।

व्याघ्रमारीव बुद्धिस्ते द्वितीयापि यदि स्थिरा।।[4]

गजगामिनी! यदि व्याघ्रमारी की द्वितीय बुद्धि की भॉति तुम्हारी भी बुद्धि स्थिर हो तो जाओ, तुम्हारा जाना अनुचित नहीं है।

---

1 शुकसप्तति, श्लोक सं० 138 पृष्ठ स० 116
2 शुकसत्तति, श्लोक सं० 146 पृष्ठ सं० 119
3 शुकसत्तति, श्लोक स० 139 पृष्ठ स० 116
4 शुकसत्तति, श्लोक स० 212 पृष्ठ स० 182

उत्पन्ना युक्तिकार्येषु बुद्धिर्यस्य न हीयते।

स एव तरते दुर्गं जलान्ते वानरो यथा।।[1]

संकट के समय युक्ति की अपेक्षा रखने वाले कार्यों में जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं होती वही विपत्ति को पार कर जाता है, जैसे जल के भीतर वानर ने किया था।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।

प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसवृताङ्गान्निशिताइवेषवः ।[2]

जो लोग कपटीजनों के साथ कपटपूर्ण व्यवहार नही करते, वे पराभव को प्राप्त होते हैं, उन सरल प्रकृति लोगों को विश्वास उत्पन्न कर शठ, खुले शरीरवालों को बाण की भॉति नष्ट कर देते हैं।

उत्प्रेक्षा का लक्षण :

'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।[3]

किसी प्रकृत अर्थात प्रस्तुत वस्तु (उपमेय) की अप्रस्तुत (उपमान) के रूप में सम्भावना करना ही उत्प्रेक्षा है। जैसे—शुकसप्तति में प्रयुक्त उपमा के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

मणिकुट्टिममार्गेषु शोभते रविविस्तरः।

शेषफणमणिरागो वसुधामिवोपागतः ।[4]

मणिमय भूमितल वाले मार्गों पर पड़ी सूर्य की किरणें ऐसी शोभित होती हैं मानो शेषनाग के सिरो की मणियों की चमक और रंग सर्वत्र भूमि पर फैला हुआ है।

उदयाचलमारूढो भाति चन्द्रो निशामुखे।

यामिनीवनितोत्सङ्गः शुल्क. कुष्णशिरःस्थितः।।[5]

---

1 शुकसप्तति., श्लोक स० 319, पृष्ठ स० 268
2 शुकसप्तति., श्लोक स० 123, पृष्ठ स० 106
3 काव्य प्रकाश, सूत्र स० 139, पृष्ठ स० 460
4 शुकसप्तति, श्लोक स० 137, पृष्ठ स० 115
5 शुकसप्तति, श्लोक सं० 147, पृष्ठ सं० 119

सायंकाल उदयाचल पर आरूढ़ चन्द्रमा शोभित हो रहा है, मानों रात्रिरूप नायिका के उत्सग में रजत मुद्रा है जिसका शिरोभाग काला है।

अर्थान्तरन्यास का लक्षण :

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।

यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।[1]

जहाँ विशेष द्वारा सामान्य का अथवा सामान्य द्वारा विशेष का, कारण द्वारा कार्य का अथवा कार्य द्वारा कारण का–साधर्म्य अथवा वैधर्म्य के माध्यम से समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है। जैसे–

रामो हेममृग न वेत्ति नहुषो याने युनक्ति द्विजान्

विप्रादेव सवत्सधेनुहरणे जाता मतिश्चार्जुने।

द्यूते भ्रातृचतुष्टयं च महिषी धर्मात्मजो दत्तवान्

प्रायः सत्पुरुषोऽप्यनर्थसमये बुद्धया परित्यज्यते।।[2]

राम स्वर्ण का (मिथ्या) मृग नहीं जान पाये। नहुष ने पालकी में ब्राह्मणों को युक्त कर दिया। कार्तवीर्य को ब्राह्मण जमदग्नि से ही सवत्सा धेनु के हरने का विचार हुआ। युधिष्ठिर ने द्यूतक्रीडा में चारों भाई और रानी को दॉव पर लगा दिया। प्रायः विपत्ति के समय सत्पुरूष भी बुद्धिभ्रष्ट हो जाते हैं।

अप्रधानः प्रधानः स्याद्यदि सेवेत पार्थिवम्।

प्रधानोऽप्यप्रधान. स्याद्यदि सेवाविवर्जितः।।[3]

यदि राजा की सेवा करें तो साधारण व्यक्ति भी असाधारण तथा मुख्य हो जाय। यदि राजा की सेवा करने से वञ्चित रहा तो असाधारण तथा मुख्य व्यक्ति भी साधारण एव नगण्य हो जाता है।

---

1 काव्य प्रकाश, सूत्र स० 164, पृष्ठ स० 500

2 शुकसप्तति, श्लोक स० 64, पृष्ठ सं० 49

3 शुकसप्तति, श्लोक स० 38, पृष्ठ स० 34-35

दीपक का लक्षण :

सुकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।

सैव क्रियासु वह्वीषु कारकस्येति दीपकम्।[1]

जहॉ अप्रस्तुत (अप्रकृत अथवा उपमान) तथा प्रस्तुत (प्रकृत अथवा उपमेय) पदार्थों मे एक ही धर्म का सम्बन्ध हो अथवा (जहॉ) अनेक क्रियाओं का एक ही कारक हो, वही दीपक अलङ्कार होता है। जैसे–

हसन्नपि नृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः।

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजंङ्गमः।[2]

हॅसता हुआ भी राजा, सम्मान करता हुआ भी दुष्ट, स्पर्श करता हुआ भी गज, सॅूघता हुआ भी सर्प, प्राणों को हरता है।

मालदीपक का लक्षण :

मालादीपकमाद्यं चेद्यथोत्तरगुणावहम्।[3]

यदि पूर्व–पूर्व (वस्तु) उत्तर–उत्तर की उपकारक (गुणाधायक) हो तो मालादीपक अलङ्कार होता है। जैसे–

उत्तमा· स्वगुणैः ख्याता माध्यमाश्च पितुर्गणैः।

अधमा मातुलैः ख्याता श्वशुरेश्चाधमाधमाः।[4]

उत्तम व्यक्ति अपने गुणो से, मध्यम व्यक्ति पिता के गुणों से, अधम व्यक्ति मामा के गुणो से तथा अधमों में अधम–महा अधम व्यक्ति ससुर के गुणों से प्रसिद्धि प्राप्त करते है।

---

1 काव्य प्रकाश, सूत्र सं० 155, पृष्ठ स० 487

2 शुकसप्तति, श्लोक स० 36, पृष्ठ स० 33-34

3 काव्य प्रकाश, सूत्र स० 156, पृष्ठ स० 489

4 शुकसत्तति, श्लोक स० 66, पृष्ठ स० 52

निर्दशना का लक्षण :

अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः निदर्शना।[1]

जहाँ वस्तुओ का परस्पर सम्बन्ध सम्भव (अबाधित) अथवा असम्भव (बाधित) होता हुआ उनके बिम्ब–प्रतिविम्बभाव का बोधन करे वहॉ निदर्शना अलङ्कार होता है। जैसे–

विश्वासप्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता।

अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हन्तुं किं नाम पौरुषम्।।[2]

विश्वास करने वाले व्यक्ति को धोखा देना कौन सा पाण्डित्य है? अंक में स्थित सोये व्यक्ति को मारना कौन सी पौरुष की बात है?

रूपक का लक्षण :

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।[3]

उपमान और उपमेय का (जिनका भेद प्रसिद्ध है उनका सादृश्यातिशयवश) जो अभेद (वर्णन) है वह रूपक अलंङ्कार है। जैसे–

धूर्तोऽसौ मत्सुतालुब्धो धनहीनो भवत्यसौ।

मनोभवग्रहगस्तो असमञ्जसमीदृशम।[4]

यह धनहीन धूर्त कामदेव रूप ग्रह से ग्रस्त हो मेरी पुत्री पर लुब्ध होता है– उसके साथ रमण करना चाहता है। इस प्रकार यह युक्ति युक्त बात नहीं है (जो हमें चोरी लगा रहा है)।

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां

लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव।

---

1 काव्य प्रकाश, सूत्र स० 148 पृष्ठ स० 474

2 शुकसप्तति', श्लोक स० 71 पृष्ठ स० 55-56

3 काव्यप्रकाश, सूत्र स० 138 पृष्ठ स० 463

4 शुकसप्तति, श्लोक स० 72 पृष्ठ स० 56

भ्रूचापाकृष्टमुक्ता· श्रवणपथजुषो नीलपक्ष्माण एते।

यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति।[1]

पुरूष तभी तक सन्मार्ग पर ठहरा रहता है, तभी तक इन्द्रियों के निरोध में समर्थ होता है, तभी तक लज्जा करता है, तभी तक विनय अपनाये रहता है, जब तक (कर्णपर्यन्त) खिंचे भ्रूरूप चाप से छोडे गये, लोचनपर्यन्त विस्तृत, नील बरौनीरूप पङ्खवाले, धैर्य को विनष्ट करने वाले, सुन्दरियों के ये नेत्ररूप बाण ह्रदय में नहीं चुभते है।

अत्रान्तरे विशालाक्षि चन्द्रो हन्तुं तमोरिपुम्।

उदयाद्रिशिरः स्थातुमुद्यतोऽशुभटैर्वृतः।।[2]

हे आयत लोचने! इस बीच में अन्धकार रूप शत्रु का विनाश करने के लिए चन्द्रमा किरण रूप योधाओं समेत उदयाचल के शिखर पर स्थित होने के लिये उद्यत हुआ।

प्रतिवस्तूपमा का लक्षण :

प्रतिवस्तूपमा तु सा।

सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थिति·।[3]

जहा एक ही साधारणधर्म को दो वाक्यों में दो बार (भिन्न शब्दों से) कहा जाय वह प्रतिवस्तूमा (अलंङ्कार) होती है। जैसे–

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।

ग्राम जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत्।।[4]

कुल की रक्षाके लिये एक को त्याग देना चाहिये। गाँव की रक्षा के लिये कुल को त्याग देना चाहिए। जनपद (देश) की रक्षा के लिये गॉव को तथा अपनी रक्षा के लिये पृथिवी (देश) को त्याग देना चाहिये।

---

1 शुकसप्तति, श्लोक स० 118, पृष्ठ स० 99-100
2 शुकसप्तति', श्लोक सं० 145, पृष्ठ स० 119
3 काव्य प्रकाश, सूत्र स० 153, पृष्ठ स० 484
4 शुकसप्तति, श्लोक स० 37, पृष्ठ स० 34

अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार का लक्षण·

अप्रस्तुतप्रशसा या सा सैव प्रस्तुतताश्रया।[1]

प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराने वाली (प्रस्तुताश्रया) जो अप्रस्तुत (अर्थ) की प्रशसा (वर्णन) है वह ही अप्रस्तुतप्रशंसा अलंङ्कार है। जैसे–

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः।।[2]

अनुकूल दैव दूसरे द्वीप से, समुद्र के मध्य से, दिगन्त से अभीष्ट अथवा प्रिय को अकस्मात शीघ्र लाकर मिला देता है।

(य) ''छन्द'' :

संस्कृत साहित्य में काव्य की मुख्यतया दो विधायें मानी गई हैं– (1) पद्य काव्य (2) गद्य काव्य और इन्हीं दोनों काव्यों के मिश्रण से चम्पूकाव्य की रचना हुई है।

काव्य के अपेक्षित उपादान–सगुण, दोष–रहित तथा अलङ्कृत शब्दार्थ माने गये हैं, परन्तु पद्य काव्य के लिये जिस उपादान की आवश्यकता पड़ती है वह है 'छन्द' अर्थात् पद्यकाव्य मे गुणो के अतिरिक्त मात्रा, वर्ण, संख्या, यति, विराम, लय आदि की भी आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति छन्दोंनियम द्वारा होती है। पद्य का ही दूसरा नाम छन्द है।

छन्द दो प्रकार के माने गये गये हैं–

(1) वैदिक छन्द (2) लौकिक छन्द।

लौकिक छन्दों की उत्पत्ति वैदिक छन्दों से हुई है तथापि लौकिक छन्द वैदिक छन्दो से अधिक भिन्न होते हैं। वैदिक छन्दों में पादों की रचना अक्षर संख्या पर निर्भर है, उनमे लघु, गुरू, वर्ण तथा गण आदि का विचार नहीं किया जाता है। इसके विपरीत लौकिक छन्दों में ये सभी नियम अनिवार्य हैं, साथ ही प्रत्येक लौकिक छन्द में

---

1 काव्य प्रकाश, सूत्र स० 150, पृष्ठ सं० 476
2 शुकसप्तति, श्लोक स० 61, पृष्ठ स० 47

चार पाद होते हैं जबकि वैदिक छन्दो में त्रिपाद वाले और पंचपाद वाले भी छन्द हैं। वैदिक छन्दो में अक्षरो की संख्या सन्धि तोडकर पूरी कर ली जाती है, जहाँ कहीं भी अक्षर नियमित संख्या से कम पाये जाते हैं जैसे–'वरेण्यम' में वरेणि+यम' मान लिया जाता है किन्तु लौकिक छन्दों में वर्ण के लिये ऐसा नहीं माना जा सकता। वैदिक छन्दो के अन्तर्गत अनुष्टुप और त्रिष्टुप छन्द आते हैं। शेष लौकिक छन्दों के अंतर्गत हैं। जैसे– बसन्ततिलका, मालिनी, इन्द्रवज्रा आदि।

संस्कृत छन्दों की रचना मात्राओं से की जाती है स्वरों से नहीं। प्रत्येक लौकिक–छन्द में चार पाद होते हैं और प्रत्येक पाद में यदि वह समवृत है तो नियमित वर्ण ही होगे और वर्णों में भी लघु गुरू नियमानुसार ही होते हैं। लघु का चिन्ह (|) और गुरू का चिन्ह (s) है।

मात्रिक छन्दों में मात्राओं की गणना की जाती है वर्णो की नहीं जबकि वर्णवृत्तों में लघु गुरू वर्णों की गणना की जाती है।

छन्द योजना काव्य–शिल्प का महत्वपूर्ण अंङ्ग हैं काव्य की आत्मा रस का महत्वपूर्ण सम्बन्ध मानव अन्तस की भाव तरंङ्ग से है। मनोवेग काव्य में प्रयुक्त शब्दों की स्वर लहरी से उद्ववेलित होते हैं। यह स्वर लहरी मधुर, ललित एवं पुरूषलय की व्यत्र्जक होती है और यही लय ही छन्द की आत्मा है। इस प्रकार छन्द–योजना का रस व्यञ्जना से घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृत काव्यशास्त्रों में छन्दों की प्रकृति पर गहराई से विचार किया गया है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने छन्दों के विषय में विशेष रूप से विचार किया और इस शाश्वत सत्य का उद्घाटन किया कि अमुक छन्द अमुक भाव अथवा रस या वस्तु वर्णन के लिये विशेष उपयुक्त है।

शुकसप्तति यद्यपि कथा–प्रधान (गद्य) ग्रन्थ है तथापि कवि ने इसमें छन्दों का यत्र–तत्र प्रयोग किया है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्द वर्णनीय वस्तु के अनुसार प्रयुक्त हुये हैं। इनमें से कुछ वैदिक हैं कुछ लौकिक हैं, जिनका विवेचन इस प्रकार है–

अनुष्टुप (प्रत्येक चरण में आठ अक्षर) :

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।

षष्ठ गुरू विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम्।।

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तम द्विचतुर्थयोः

गुरू षष्ठ च जानीयात् शेषेष्वनियमो मतः।[1]

अर्थात् अनुष्टुप छन्द के चारों चरणों मे पञ्चम वर्ण लघु होता है, द्वितीय और चतुर्थ चरणों का सत्तम वर्ण भी लघु होता है एव चारो चरणों में षष्ठ वर्ण गुरू होता है।

विषय वस्तु के अनुसार अनुष्टुप का वर्णन सुवृत तिलक में इस प्रकार किया गया है–

आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तारसङ्ग्रहे।

समोपदेशवृतान्ते सन्तः शसन्त्यनुष्टुभम।।

किसी सर्ग के प्रारम्भ में कथा के विस्तार संग्रह करने तथा उपदेश या वृतान्त कथन मे अनुष्टुप छन्द के प्रयोग की प्रशंसा विद्वानगण करते हैं। अनुष्टुप का स्वभाव इतिवृत्त वर्णन करने में बड़ा सुविधा पूर्ण होता है।

शुकसप्तति मे कथाओं के मध्य में किसी तथ्य या बात के समर्थन के प्रसङ्ग में अथवा आदर्श सम्बन्धित, कथनो में प्रसङ्ग में अथवा किसी तथ्य को प्रमाणिक सिद्ध करने के प्रसग मे अनुष्टुप का प्रयोग किया गया है। जैसे–

पित्रोस्ते दु:खिनोर्दु:खात्पतत्यश्रुचयो भुवि।

तेन पापेन ते वत्स पतनं देवशर्मवत्।[2]

अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि पुत्र के द्यूतादि व्यसनों में आसक्त रहने से माता–पिता को असह्य दुःख उत्पन्न होता है।

---

1 छन्दोमजरी 4/7

2 शुकसप्तति, श्लोक स० 2, पृष्ठ स० 3

निजान्वयप्रणीतं यः सम्यग्धर्मं निषेवते।

उत्तमाधममध्येषु विकारेषु पराङ्मुखः।[1]

स गृही स मुनिः साधु स च योगी स धार्मिक :।

पितृशुश्रूषको नित्यं जन्तुः साधारणाश्च यः।[2]

अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह आदर्श दर्शाया गया है कि सभी प्रकार के विकारो से रहित होकर जो मनुष्य अपने कुल का धर्मपूर्वक पालन करता है वही सच्चा गृहस्थ है, साधु है।

व्याधेन बोधितस्तेन स ययौ गृहमात्समः

अभवत्कीर्तिमॉल्लोके परतः कीर्तिभाजनम् ।[3]

अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह बताया गया है कि पूज्य का सम्मान न करने से मनुष्य को सम्मान की प्राप्ति नहीं होती।

तावत्पिता तथा बन्धुर्यावज्जीवति मानवः।

मृतो मृत इति ज्ञात्वा क्षणात्स्नेहो निवर्तते।।[4]

इस छन्द के द्वारा प्रस्तुत श्लोक मे समझाया गया है कि जीवित रहने पर ही अपनो का स्नेह रहता है, मरने पर नहीं।

कौतुकान्वेषिणो नित्यं दुर्जना व्यसनागमे।

मासोपवासिनी यद्वद्वणिक्पुत्रकचग्रहे।।[5]

उपरोक्त अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि विपत्ति आ पड़ने पर दुष्ट तमाशा ही देखना चाहते हैं, कोई सहायता नहीं करता है।

प्रपच्छ सा तदा सार्धं पुश्चलीभिः कृतादरा।

ससम्भ्रमा जगादेदं किमिदं भाषितं शुकः।[6]

---

1 शुकसप्तति:, श्लोक स० 3, पृष्ठ सं० 5
2 शुकसप्तति:, श्लोक सं० 4, पृष्ठ सं० 5
3 शुकसप्तति, श्लोक स० 6, पृष्ठ सं० 6
4 शुकसप्तति', श्लोक सं० 7, पृष्ठ स० 7
5 शुकसप्तति, श्लोक सं० 8, पृष्ठ स० 9
6 शुकसप्तति:, श्लोक स० 9, पृष्ठ स० 9

कथयन्ति न याचन्ते भिक्षाहारा गृहे गृहे।

अर्थिभ्यो दीयता नित्यमदातु. फलमीदृशम्।।[1]

उपरोक्त छन्द के माध्यम से बतलाया गया है कि याचक को दान न देने वाला भीयाचक बनकर भटकता है।

बुद्धिरस्ति यदैषा ते व्रज सुभ्रु परान्तिकम्।

भज निद्रां विशालक्षि मान्यथा स्वं विडम्बय।।[2]

गच्छ देवि किमाश्चर्यं यत्र ते रमते मन.।

नृपवद्यदि जानासि परित्राणं त्वमात्मन.।[3]

इस अनुष्टुय छन्द में यही दर्शाया गया है कि जिसका मन जहाँ रमता है वह वहीं जाता है कही और नही।

कृतावज्ञः पुरा देवि वृद्धवाक्यपराङ्मुखः।[4]

पतितो ब्राह्मणोऽनर्थे विषकन्याविवाहने।।

इस अनुष्टुप छन्द मे यह दर्शाया गया है कि बड़े बुजुर्गों के वचनों का तिरस्कार करने वाला घोर सङ्कट में पडता है।

अविदग्धः पति स्त्रीणां प्रौढानां नायकोऽगुणी।

गुणिनां त्यागिना स्तोको विभवश्चेति दुःखकृत्।।[5]

इस अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि कामकलानिपुण पत्नी का मूर्ख पति, प्रौढ स्त्री का मूर्ख नायक, दानशील गुणीजन का अल्पधन–ये तीनों दुःखदायी होते है।

तथापि कामिनीलुब्धो धिक्कृतः साधुभिस्तदा।।

तामेवादाय चलितस्तत्कृते निहतः पथि।।[6]

---

1 शुकसत्तति, श्लोक स० 17, पृष्ठ स० 16
2 शुकसत्तति, श्लोक सं० 19 पृष्ठ स० 18
3 शुकसत्तति, श्लोक स० 20 पृष्ठ स० 18
4 शु० स०, श्लोक स० 22, पृष्ठ स० 23
5 शु० स०, श्लोक स० 23, पृष्ठ सं० 24
6 शु० स०, श्लोक स० 28, पृष्ठ स० 29

नदीनां नखिनाञ्चैव श्रृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम्।

विश्वासो नैन कर्तव्य· स्त्रीषु राजकुलेषु च ।।[1]

इस अनुष्टुप छन्द मे यह दर्शाया गया है कि नदियों, नखधारी, सिंहादि, श्रृंगधारी, भेडा आदि पशुओं, शस्त्रधारी पुरूषो, स्त्रियों एवं राजाओ का विश्वास नहीं करना चाहिए।

भोगिनः कञ्चुकासक्ताः क्रूराः कुटिलगामिनः।

दुःखोपसर्पणीयाश्च राजानो भुजगा इव।।[2]

इस अनुष्टुप छन्द मे यह दर्शाया गया है कि भोगी, कञ्चुकावृत, क्रूर, कुटिलगामी, राजा, सर्पो के समान बडी कठिनाई से प्रापणीय होते हैं।

आरोहन्ति शनैर्भृत्या धुन्वन्तमपि पार्थिवम्।

कोपप्रसादवस्तूनां विचिन्वन्ति समीपपगाः।।[3]

इन अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह आदर्श दर्शाया गया है कि जिस प्रकार से वृक्ष पर चढ़ने वाला व्यक्ति गिरने का भय त्यागकर धीरे–धीरे उस पर चढ़ जाता है और यथाभाग्य मधुर फलो का चयन करता है उसी प्रकार अप्रसन्न राजा के पास अपनी पहुँच बनाने वाले व्यक्ति यथाभाग्य प्रसादफल प्राप्त करते हैं।

रोगैर्ग्रहैर्नृपर्ग्रस्तो या न वेत्ति जडक्रियः।

मध्यमन्त्रमुपायं च सोऽवश्यं तात न स्थिरः ।।[4]

उपरोक्त अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि जो व्यक्ति आलसी एवं दीर्घसूत्री रोगग्रस्त होने पर युक्ताहार–विहार, ग्रहग्रस्त होने पर मन्त्र, और नृपग्रस्त होने पर साम–दानादि उपाय नही करता वह नष्ट हो जाता है।

---

1 शु० स०, श्लोक स० 34, पृष्ठ स० 33
2 शु० स०, श्लोक स० 35, पृष्ठ स० 33
3 शु० स०, श्लोक स० 39, पृष्ठ स० 35
4 शु० स०, श्लोक स० 43, पृष्ठ स० 37

मा वृकोदर पादेन एकादशचमूपतिम्।

पञ्चानामापि यो भर्ता नासाप्रकृतिमानवी।।[1]

इस अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह उपदेश दिया गया है कि पाँच आदमियों का पोषण करने वाला भी महान होता है दुर्योधन के पास तो ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी।।

प्रदोषसमयेऽन्यस्मिन्कामिनी काममोहिता।

विनयेन शुकं प्राह गच्छामि यदि मन्यसे।।[2]

विरञ्चिरपि कामार्तःस्वसुतामभिलाषुकः।

दृश्यतेऽद्यापि वियति हारिर्णीं तनुमाश्रितः।।[3]

यह अनुष्टुप छन्द यह उपदेश देता है कि कामपीडित व्यक्ति किसी में भी साभिलाष हो सकता है इससे उसे पाप या कलङ्क नहीं लगता।

तयैवं बोधितो मूर्खः स यावद्रमते न ताम्।

फूत्कृतं मुषितास्मीति त्रायतां त्रायतामहो।।[4]

व्रज देवि सुखं भुडक्ष्व अर्धभुक्ते पतौ यथा।

कृत राजिकया चित्तमुत्तरं धूलिसयुतम।।[5]

युक्तमेव विशालाक्षि पर रन्तुं यदृच्छया।

यद्यायाते पतौ वेत्सि धनश्रीरिव भाषितुम।।[6]

न स्नाति न च सा भुङ्क्ते न जल्पति सखीसमम्।

निरस्ताशेषसस्कारा स्वदेहेऽपि पराङ्मुखी।।[7]

मलयानिलमारूढ कोकिलालापडिण्डिमः।

---

1 शु० स०, श्लोक स० 50, पृष्ठ स० 40
2 शु० स०, श्लोक सं० 83, पृष्ठ स० 69
3 शु० स०, श्लोक स० 96, पृष्ठ स० 76
4 शु० स०, श्लोक स० 98, पृष्ठ स० 76
5 शु० स०, श्लोक स० 100, पृष्ठ स० 80
6 शु० स०, श्लोक स० 101, पृष्ठ स० 82
7 शु० स०, श्लोक स० 102 , पृष्ठ स० 83

मल्लिकामोददूतश्च मधुपारवमङ्गलः।।[1]

अन्यदा तु समायतो वसन्त कालराट् क्षितौ।

मनोऽपि विक्रिया यस्मिन्याति संयमिनां किल।।[2]

सत्यमेव त्वयाभाणि कर्तव्य यन्मनोऽनुगम्।

मनस्तु मुग्धिका यद्वदशक्यान्खेदयत्यलम्।।[3]

इस अनुष्टुप के माध्यम से यही कहा गया है कि मनोवाञ्छित कार्य से ही खुशी प्राप्त होती है अन्यथा खिन्नता प्राप्त होती है।

गच्छ देवि न ते दोषो गच्छन्तयाः परवेश्मनि।

यदि काचिच्छरीरे ते बुद्धि सर्षपचौरवत्।।[4]

कुरू यद्रोचते भीरू यदि कर्तुं त्वमीश्वरा।

यथा सन्तिकया भर्ता स्वच्छन्दा च विमोचिता।।[5]

गच्छ देवि मनो यत्र रमते ते नरान्तरे।

केलिकावद्यदा वेत्सि पतिवञ्चनमद्भुतम।।[6]

अनुरागो वृथा स्त्रीषु गर्वो वृथा तथा।

प्रियोऽहं सर्वदा हयस्या ममैषा सर्वदा प्रिया।।[7]

इस अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह उपदेश दिया गया है कि स्त्रीविषयक अनुराग व गर्व व्यर्थ होता है।

ये जात्यादिमहोत्साहा, नोपगच्छन्ति पार्थिवम्।

तेषामामरणं भिक्षा प्रायश्चित विनिर्मितम्।।[8]

---

1 शु० स०, श्लोक स० 103, पृष्ठ स० 83
2 शु० स०, श्लोक स० 104, पृष्ठ स० 83
3 शु० स०, श्लोक स० 110, पृष्ठ स० 91
4 शु० स०, श्लोक स० 115, पृष्ठ स० 97
5 शु० स०, श्लोक सं० 117, पृष्ठ सं० 98
6 शु० स०, श्लोक स० 119, पृष्ठ स० 101
7 शु० स०, श्लोक स० 322, पृष्ठ स० 272
8 शु० स०, श्लोक सं० 42, पृष्ठ स० 36

विवाहे पार्वतीं दृष्ट्वा हरस्य हरवल्लभाम्।

चस्कन्द रेतस्तस्यापि, बालखिल्यास्तदुद्भवाः।।[1]

इस अनुष्टुप छन्द के माध्यम से यह बतलाया गया है राजा के समीप न जाने से मनुष्य किस दशा को प्राप्त हो जाता है और बालखिब्य ऋषि की उत्पत्ति कैसे हुई।

शार्दूलविक्रीडित (प्रत्येक चरण में उन्नीस अक्षर) :

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरव. शार्दूलविक्रीडितम।[2]

जिस छन्द के प्रत्येक चरण मे क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण तथा अन्त मे एक गुरू वर्ण आये एवं 12 तथा 7 सख्यक अक्षरों पर यति हो, उसे शार्दूलविक्रीडित छन्द कहा जाता है।

वैद्य पानरतं नटं कुपठितं मूर्खं परिव्राजकं

योधं कापुरूष विटं विवयसं स्वाध्यायहीनं द्विजम्।

राज्यं बालनरेन्द्रमन्त्रिरहित मित्रं छलान्वेषि च

भार्या यौवनगर्वितां पररता मुञ्चन्ति ये पण्डिता. ।।[3]

इस छन्द के माध्यम से यह उपदेश दिया गया है कि पण्डितजनों को मद्यपीने वाले वैद्य, ठीक सवाद न कहने वाले अभिनेता, मूर्ख संन्यासी, कायर योद्धा, बुड्ढे विट, वेदादि नहीं पढ़ने वाले ब्राह्मण, मन्त्रिरहित बालराजा के राज्य, कपटाचारी मित्र तथा यौवनोन्मत्त एवं परपुरूष मे आसक्त पत्नी का परित्याग कर देना चाहिये।

क्षुत्क्षामस्य करण्डपिण्डिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा

कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः।

तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा

स्वस्थास्तिष्ठत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम्।[4]

---

1 शु० स०, श्लोक स० 97 पृष्ठ स० 76

2 वृत्तरत्नाकर, 3/100

3 शुकसप्तति, श्लोक स० 27, पृष्ठ सं० 28

4 शुकसप्तति, श्लोक स० 62, पृष्ठ स० 47-48

इस छन्द के माध्यम से यह उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को धैर्य रखना चाहये क्यों कि उसकी समृद्धि और विपत्ति, जीवन और मरण सबका कारण दैव है।

रामो हेममृगं न वेत्ति नहुषो याने युनक्ति द्विजान्

विप्रादेव सवत्सधेनुहरणे जाता मतिश्चार्जुने।

द्यूते भ्रातृचतुष्टयं च महिषीं धर्मात्मजो दत्तवान्

प्राय. सत्पुरूषोऽप्यनर्थसमये बुद्धया परित्यज्यते।[1]

इस छन्द के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि प्रायः विपत्ति के समय सत्पुरूष भी बुद्धि भ्रष्ट हो जाते है।

यत्र स्वेदलवैरल विलुलितैर्व्यालुप्यते चन्दनं

सच्छेदैर्मणितैश्च यत्रा रणित न श्रूयते नुपुरम्।

यत्रायान्त्यचिरेण सर्वविषयाः काम तदेकाग्रतः

सख्यस्तत्सुरत भणामि रतये शेषा च लोकस्थितिः ।।[2]

प्रस्तुत छन्द में किस प्रकार का सुरत प्रीतिकारक होता है, इसके बारे में बताया गया है।

उन्नादाम्बुदवद्धितान्धतमसि प्रभ्रष्टदिङ् मण्डले।

काले यामिकजागरूकसुभटव्याकीर्णकोलाहले।

भूपस्यासुहृदर्णवाम्बुवडवावह्नस्त्वमन्तःपुरा

दायातासि यदम्बुजाक्षि कृतक मन्ये भयं योषिताम।[3]

प्रस्तुत छन्द के माध्यम से यही बताया गया है कि प्रमदा–जन में जो भय की प्रवृत्ति है वह केवल कृत्रिम है, वास्तव में उन्हें किसी से भय नही लगता।

---

1 शुकसप्तति', श्लोक स० 64, पृष्ठ सं० 49

2 शुकसप्तति, श्लोक स० 131 पृष्ठ स० 112-113

3 शुकसप्तति, श्लोक स० 259 पृष्ठ स० 227

माधुर्य प्रमदाजने सुललितं दाक्षिण्यमार्ये जने,

शौर्य शत्रुषु मार्दवं गुरूजने धर्मिष्ठता साधुषु।

मर्मज्ञेष्वनुवर्तन बहुविधं मानं जने गर्विते,

शाठय पापजने नरस्य कथित. पर्यन्तमष्टौ गुणां.।।[1]

इस छन्द के माध्यम से यह बताया गया है कि यदि ये आठ गुण मुनष्य में अर्न्तनिहित हैं तभी वह गुणी माना जायेगा।

अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्यात्सानुरागेण कः

प्रजाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात्फलम्।

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये

ते भृत्या नृपतेः कलत्रामितरे सम्पत्सु चापत्सु च।[2]

उपरोक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से यही आदर्श दर्शाया गया है कि जिस सेवक मे प्रज्ञा, विक्रम, भक्ति ये तीनों गुण पूर्ण विकसित हों वे ही सेवक राजा की समृद्धि बढ़ाने वाले, सम्पत्ति और विपत्ति में साथ देने वाले दूसरे कलत्र (पत्नी) है।

स्वामी दुर्णयवारणव्यतिकरे शास्त्रोपदेशे गुरू–

र्विश्रम्भे हृदयं नियोगसमये दासो भये चाश्रयः।

दाता सप्तसमुद्रसीमरशनादामान्तिकायाःक्षितेः

सर्वाकारमभूत्स्वयं वरसुहृत्को वा न कर्णो मम।।[3]

प्रस्तुत छन्द मे मन्त्री में होने वाले गुणों को दर्शाया गया है।

मालिनी : (प्रत्येक चरण में पन्द्रह अक्षर)

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।[4]

---

1 शुकसप्तति:, श्लोक स० 119 पृष्ठ स० 104
2 शुकसप्तति., श्लोक स० 229 पृष्ठ स० 197
3 शुकसप्तति, श्लोक स० 233 पृष्ठ सं० 200
4 वृत्तरत्नाकर, 3/87

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण मगण, यगण तथा यगण आये, साथ ही साथ भोगी अर्थात् नाग (8) तथा लोक (7) सख्यक अक्षरों पर यति हो, उसे मालिनी कहते हैं।

सुवृत–तिलक मे मालिनी छन्द का इस प्रकार वर्णन किया गया है–

कुर्यात्सर्गस्य पर्यन्ते मालिनी द्रुततालवत्।

सर्ग के अन्त में द्रुतताल के समान मालिनी छन्द का प्रयोग करना चाहिये। महाकाव्यों मे सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन करने का नियम है। सर्ग की समाप्ति में जब कवि को किसी कथा को अथवा प्रसङ्ग को शीघ्रता से समाप्त करना होता है तब मालिनी छन्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है।

शुकसप्तति कथा काव्य होने के कारण इसमें सर्ग नहीं प्राप्त होते हैं। अतः कवि ने मालिनी के स्वरूप का पालन करते हुये इस छन्द का प्रयोग कहीं–कहीं कथा के मध्य और कहीं–कही कथा के अन्त में किया है।

जैसे–

उडुगणपरिवारो नायकोऽप्योषधीना–
ममृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः
भवति विकलमूर्तिर्मण्डलं प्राप्य भानोः
परसदननिविष्टः को न धत्ते लघुत्वम्।।[1]

मालिनी छन्द के माध्यम से यह बताया गया है कि तेजस्वी से तेजस्वी व्यक्ति भी दूसरे के घर जाकर लघुता को प्राप्त करता है अर्थात् उसका तेज घट जाता है।

वंशस्थ- (प्रत्येक चरण में बारह अक्षर)

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।[2]

---

1 शुकसत्तति॰, श्लोक स॰ 307 पृष्ठ स॰ 257

2 वृत्तरत्नाकर, 3/46

वीर एवं रौद्र रस के मेल में वसन्ततिलका छन्द उपयुक्त माना गया है किन्तु शुकसप्तति में स्त्रियों के स्वभाव, कथन उनके आचरण, साधुपुरूषों के आचरण इत्यादि का कथन करने के प्रसङ्ग में कवि ने इस छन्द का प्रयोग किया है। जैसे–

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं,

कूर्मो विभर्ति धरणीं खलु चात्मपृष्ठे।

अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्नि–

मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।[1]

वसन्तलिका छन्द के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि महान पुरूष अपना सर्वस्व बलिदान करके भी दिये गये वचन का परिपालन करते हैं।

चिन्तामिमां वहषि किं गजयूथनाथ

यूथाद्वियोगविनिमीलितनेत्रायुग्म।

पिण्डं गृहाण पिब वारि यथोपनीतं

दैवाद्भवन्ति विपदः किल सम्पदो वा।

इस छन्द के माध्यम से यह उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को हर स्थिति में धैर्य धारण करना चाहिये और जो कुछ भी दैवकृपा से प्राप्त हो रहा हो उसी में संतोष रखना चाहिए। सुख–दुःख तो भाग्यवश आते ही रहते हैं।

सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति

निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।

एताः प्रविश्य हृदयं सदयं नराणा

किं नाम वामनयना न समाचरन्ति।[2]

इस छन्द के माध्यम से यह बताया गया है कि किस प्रकार से कुटिल नेत्र वाली स्त्रियाँ दयालु हृदय पुरूषों के साथ कौन–कौन से व्यवहार करती हैं।

---

1 शुकसप्तति, श्लोक सं० 13, पृष्ठ सं० 12
2 शुकसप्तति, श्लोक स० 330, पृष्ठ स० 275-276

स्रग्धरा (प्रत्येक चरण में इक्कीस अक्षर)

म्रनैर्याना त्रायेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।[1]

जिसके चारो चरणो मे क्रमश मगण, रगण, भगण, नगण तथा तीन यगणों से युक्त और तीन बार मुनि अर्थात् (7) सख्यक अक्षरों पर यति हो ऐसी छन्द रचना को स्रग्धरा कहा जाता है। जैसे–

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवित पुरूषस्तावदेवेन्द्रियाणां।

लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव।

भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथजुषो नीलपक्ष्माण एते

यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति।[2]

प्रस्तुत श्लोक में स्रग्धरा छन्द के माध्यम से पुरूषों की सीमाओं एवं उसके धैर्य का वर्णन किया गया है।

इन्द्रवज्रा (प्रत्येक चरण मे ग्यारह अक्षर)

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।[3]

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण तथा दो गुरू वर्ण क्रमशः हों, उसे इन्द्रवज्रा छन्द कहते हैं। यति प्रत्येक चरण के अन्त में होता है। जैसे–

इन्दात्प्रभुत्वं ज्वलनात्प्रतापं क्रोधं यमाद्वैश्रवणाच्च वित्तम्।

सत्त्वस्थिरे रामजनार्दनाभ्यामादाय राज्ञः क्रियते शरीरम्।।[4]

प्रस्तुत छन्द के माध्यम से राजा के शरीर की रचना कैसे होती है यह बताया गया है।

---

1 वृत्तरत्नाक, 3/104
2 शुकसप्तति, श्लोक स० 118 पृष्ठ स० 99
3 वृत्तरत्नाक, 3/23
4 शुकसत्तति, श्लोक स० 49 पृष्ठ स० 39

आर्याछन्द :

यस्या. पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चमदश साऽऽर्या।।[1]

अर्थात जिसके प्रथम चरण मे तथा तृतीय चरण मे भी बारह मात्रायें हों, द्वितीय चरण में अठारह तथा चतुर्थ चरण मे पन्द्रह मात्रायें हो, वह आर्या है।

जैसे–

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्।

आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः।[2]

प्रस्तुत आर्या छन्द के माध्यम से यही उपदिष्ट किया गया है कि अनुकूल दैव दूसरे दीप से, समुद्र के मध्य से, दिगन्त से अभीष्ट अथवा प्रिय को अकस्मात् शीघ्र लोकर मिला देता है।

उपर्युक्त छन्दो के प्रयोग को देखकर यह स्पष्ट होता है कि कवि ने अपनी किसी विशिष्ट बात पर बल देने के लिये छन्दों का आश्रय लिया है। आदर्श सम्बन्धी, व्यवहार परक, नीतिपरक कथनों मे वैशिष्ट्य उत्पन्न करने के लिये ही कवि ने विविध छन्दो का प्रयोग किया है जो गद्य द्वारा सभव नहीं था। शुकसप्तति की गद्यमयी कथा के मध्य में इन छन्दो का प्रयोग 'सोने मे सुहागे' का काम करते हैं। ये छन्द कथा को गति प्रदान करने में ही सार्थक भूमिका निभाते हुये दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार कवि का छन्द प्रयोग अत्यन्त सार्थक है।

* * * * *

---

1 श्रुतबोध।

2 शुकसत्तति., श्लोक स० 61 पृष्ठ स० 39

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS

छठाँ अध्याय

"संस्करण एवं सूक्तियाँ"

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS

"संस्करण एवं सूक्तियाँ"

शुकसप्तति के प्रधान रुप से दो संस्करण प्राप्त होते हैं –

(1) सामान्य संस्करण :

इसका सम्पादन स्मिट नामक विद्वान ने किया है किन्तु इसका काल अनिश्चित है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इसे संक्षिप्त वाचनिका माना है। प्रसिद्ध इतिहासकार कीथ के अनुसार सामान्य और अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत दोनों संस्करणों का सम्पादन स्मिट ने किया है। यद्यपि श्वेताम्बर जैन की रचना प्रतीत होती है।[1] इनमें से साधारण संस्करण प्राचीन नही है। यह बहुत कुछ परिष्कृत–संस्करण का एक संक्षिप्त रुपान्तर है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि इसमें कहानियों के वास्तविक अभिप्राय को अस्पष्ट ही छोड़ दिया गया है। ऐसा लगता है कि जैन ग्रन्थकार हेमचन्द्र किसी न किसी रुप में इससे परिचित थे।

इसका मूलरुप सम्भवत. सरल गद्य मे रहा होगा जिसके बीच–बीच में सूक्तिपरक पद्यों का निवेश किया गया रहा होगा और कथाओं के आदि और अन्त में उनके विषय वर्णन–परक पद्य रहे होंगे।

इस संस्करण में मूलकथा के रुप में हरिदत्त नामक व्यापारी का मदनसेन नामक एक मूर्ख पुत्र की कथा प्राप्त होती है। जो शुक और मैना के उपदेश के कारण सदाचारी बन जाता है। यहॉ तक कि जब वह व्यापार हेतु यात्रा पर जाने लगता है तब अपनी पत्नी को उन दोनों पक्षियों के सुपुर्द कर जाता है। बुद्धिमान शुक प्रतिदिन एक कथा को सुनाकर उसकी पत्नी के चरित्र की रक्षा करता है।

---

1 संस्कृत–साहित्य का इतिहास–ए बी कीथ।
भाषान्तरकार (डा0 मङ्गलदेव शास्त्री) पृष्ठ–345

(2) परिष्कृत संस्करण :

इस संस्करण का सम्पादन चिन्तामणि भट्ट नामक एक ब्राह्मण द्वारा किया गया है। इसमें चिन्तामणि भट्ट ने पञ्चतन्त्र के पूर्णभट्ट कृत (1999) जैन संस्करण का उपयोग किया था। ऐसा भी विचार प्रकट किया गया है कि बहुत सम्भव है कि कुलटा पत्नियो की कम से कम कुछ कहानियॉ शुकसप्तति के एक प्राचीनतर रुप से ली गयी थी। इसका समय लगभग 12 वीं शताब्दी के आस–पास है।

इस संस्करण मे प्राकृत पद्यों की विद्यमानता से यह सम्भावना प्रकट की जा सकती है कि यह संग्रह अपने मूलरुप में प्राकृत भाषा में रहा होगा।

इस संस्करण में 70 कहानियॉ प्राप्त होती हैं। जिसमें कथा के रुप में हरिदत्त व्यापारी के मूर्खपुत्र की कथा प्राप्त होती है जिसके विदेश जाने पर उसकी पत्नी को कुमार्ग पर जाने से बचाने के लिए शुक द्वारा प्रतिदिन एक कहानी सुनाकर उसके पति के आने तक पथभ्रष्ट होने से रोका जाता है।

(3) "सूक्तियाँ" :

सूक्ति का अर्थ है, सु+उक्ति अर्थात् सुन्दर कथन। काव्य शास्त्रकारों ने काव्य के प्रयोजनों के अन्तर्गत "व्यवहाविदे" "कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे"। इन दो प्रयोजनों का कथन किया है।[1] यदि यह कहा जाय कि इन दोनों प्रयोजनों की पूर्ति काव्य में प्रयुक्त सूक्तियों के माध्यम से होती है तो गलत न होगा, क्योंकि सूक्तियाँ व्यवहारिक ज्ञान तो प्रदान करती ही हैं, साथ ही "कान्तावत्" उपदेश भी देती हैं।

किसी भी कथन को सारगार्भित रुप से ऐसे सुन्दर ढंग से कहना कि उसका प्रभाव चिरस्थायी हो सके, सूक्ति कहलाता है। प्राचीन काल से कवि नैतिक, धार्मिक,

---

1 काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।
आचार्य मम्मट, काव्य प्रकाश , प्रथम उल्लास, कारिका 2, पृ0 स0 10

राजनैतिक, तथा लौकिक जगत से सम्बन्धित अपने कथन को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिये सूक्तियों का आश्रय लेते आये हैं। यदि कथन को सामान्य रुप से कहा जाय तो समाज में उसका प्रभाव प्रायः नही पड पाता, किन्तु उसी कथन को यदि अलङ्कारिक या चमत्कारिक ढंग से कहा जाय तो व्यक्ति और समाज पर उसक प्रभाव निश्चित रुप से पडता है । ये सूक्तियाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार ही हैं।

सस्कृत–साहित्य की प्रत्येक विधा सूक्तियों से समृद्ध है। काव्य, नाटक, कथा एवं आख्यायिका में प्रचुर मात्रा में सूक्तियो का प्रयोग मिलता है। वस्तुतः ज्ञानी पुरुषों एव कवियों की वाणी से उद्भूत निष्कर्ष कथन ही सूक्तियों का रुप धारण कर लते हैं।[1] संस्कृत साहित्य में जीवन, जगत, समाज, राजनीति, भौतिक द्वन्दों, भाग्य, पुरुषार्थ, सज्जन, दुर्जन, मित्र, अमित्र, आदि विविध विषयों से सम्बन्धित सूक्तियों का प्रयोग देखा जा सकता है। जीवन के हर क्षेत्र पर इन सूक्तियों का प्रभाव देखा जा सकता है।[2]

शुकसप्तति में प्रचुर मात्रा मे सूक्तियों का प्रयोग हुआ है। कवि ने अपने कथन को अधिक प्रभावशाली एव शिक्षात्मक बनाने के लिये प्रायः प्रत्येक कथा के अन्तर्गत शुक के माध्यम से सारगर्भित कथनों का प्रयोग किया है। इस ग्रंथ में सूक्तियों की विविधता दर्शनीय है। मदनविनोद की पत्नी प्रभावती को कुमार्ग पर जाने से बचाने के लिये अनेक उपदेशात्मक, व्यवहारिक, नैतिक–आदर्शों से युक्त सूक्तियों का प्रयोग

---

1 'महापुरुषो की वाणियों मे अद्भुत शक्ति होती है। कठिनाई के समय और कर्तव्यगत द्वन्द उपस्थित होने पर ये सूक्तियाँ प्रकाश और प्रेरणा देती हैं। ससार की समृद्धि भाषाओं में सूक्तियों का बड़ा मान है।"
हजारी प्रसाद द्विवेदी
रमाशकर गुप्त संग्रहीत "सूक्ति सागर", भूमिका पृ० 7, 1959

2 विधाता की मानव सृष्टि में सूक्तियाँ कल्प–तरु के समान हैं। उनकी सुविस्तृत सघन–छाया में जीवन–पथ की थकान को ही दूर करने की शक्ति नहीं है, प्रत्युत भविष्य की दुर्गम–यात्रा को सुखपूर्वक समाप्त करने का इनमें अक्षय तथा दैवी सम्बल भी रहता है। किं बहुना, मानव–मन की कोई ऐसी अज्ञात दिशा अथवा अँधेरी गली नहीं है, जिसमें इन सूक्तियों के शुभ्र किरणों का प्रकाश न पड़ता हो। सुख–दुख, विपत्ति, अनुराग–विराग, सज्जन–दुर्जन, योग–भोग, प्रशसा–निन्दा से भरे इस द्वन्दात्मक जगत में इन सूक्तियों की गति सर्वत्र है। ब्रह्मा की भाँति ये सर्वव्यापी बन गई हैं।
राम प्रताप शास्त्री, रमाशंकर गुप्त सग्रहीत–
"सूक्ति–सागर" पृ० 10, 1959

कवि ने किया है। ग्रन्थकार ने सूक्तियों का प्रयोग पद्यात्मक एवं गद्यात्मक दोनों रुपों में किया है।

सज्जनो का व्यवहार किस तरह होता है इस तरह की भी सूक्तियाँ कुछ श्लोकों में दृष्टव्य हैं–

सज्जनों के प्रति :

सज्जन तीर्थरुप होते हैं, सज्जनों का दर्शन पवित्रकर होता है। सज्जन तीर्थों से भी बढकर होते है क्योकि तीर्थ तो कुछ समय मे फलदायी होते हैं परन्तु सज्जनों का समागम तत्काल फल देता है।[1]

दुष्टो की सङ्गति से सज्जन भी विकार को प्राप्त हो जाते हैं। दुर्योधन का साथ करने से भीष्म गायों को हरने के लिये गये थे।[2]

इसी प्रकार मनुष्य को एक दूसरे के प्रति किस प्रकार का व्यवहार रखना चाहिये इसके लिये भी विभिन्न प्रकर की सूक्तियाँ शुकसप्तति ग्रन्थ में कही गयी हैं।

यथा–

(अ) व्यवहारिक सूक्तियाँ :

सत्कर्म के बल से गर्वयुक्त धीर सदा निर्दोष एवं भय रहित होते हैं और कुकर्म में संलग्न सत्रस्त पापी–जन सदा सर्वत्र शंका युक्त ही होते हैं।[3]

---

1 साधूना दर्शनं पुण्य तीर्थभूता हि साधव.।
तीर्थं फलति कालेन सद्य साधुसमामम।
शुकसप्तति, श्लोक सं0 316, पृष्ठ स0 264

2 असता सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणे गतः।।
शुकसप्ततिः, श्लोक सं0 336, पृष्ठ स0 279

3 सर्वत्र शुचयो धीरा सुकर्मबलगर्विता।
कुकर्मभयसन्त्रस्ता. पापा. सर्वत्र शङ्किता।।
शुकसप्तति, श्लोकसं0 323, पृष्ठस0 272

अविश्वस्त पर विश्वास न करें, विश्वास पर भी विश्वास न करें, क्योंकि विश्वास से उत्पन्न भय समूल विनष्ट कर देता है।[1]

बिना दूसरों के मर्मस्थल का छेदन किये, बिना दुष्कर कर्म किये, बिना किसी को मारे, मत्स्यघाती (मछुआ) की भॉति कोई महालक्ष्मी को नहीं पाता है।[2]

भूखा क्या पाप नहीं करता? भूख से पीड़ित जन निष्करुण हो जाते हैं। ये जीवन के लिये (पाप–कर्म) करते हैं। सज्जनों का जो मत (पुण्य–कर्म) है वह इन्हें मान्य नहीं हैं।[3]

हे भीरु! प्राणियों की बुद्धि बलवती है, पराक्रम नहीं। (जैसे) अल्प बल वाले शशक ने पराक्रमी सिंह को मार डाला।[4]

राजन ! प्रिय बोलने वाले पुरुष तो सदा सुलभ होते हैं किन्तु अप्रिय तथा हित की बात कहने वाला और सुनने वाला ये दोनों दुर्लभ होते हैं।

व्यवहारिक सूक्तियो के अतिरिक्त इस कथा–ग्रन्थ में उपदेशप्रद सूक्तियों की भी अनुपम छटा दर्शनीय है। यथा–

---

1 न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्न मूलादपि निकृन्तति।।

शुकसप्तति, श्लोक स0 120, पृष्ठ स0 105

2 नाभित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दुष्करम्।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्

शुकसत्पति, श्लोक सं0 156, पृष्ठ सं0 125

3 बुभुक्षित· कि न करोति पाप क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति।
प्राणर्थमेते हि समाचरन्ति मतं सता यन्न मत तदेषाम्।।

शुकसप्ततिः श्लोक सं0 59, पृष्ठ सं0 45

4 बुद्धिर्बलवती भीरु सत्त्वानां न पराक्रमः।
शशकेनाल्पसत्त्वेन हत· सिह· पराक्रमी।।

शुकसप्तति, श्लोकस0 178, पृष्ठस0 147

(ब) उपदेशात्मक सूक्तियाँ :

भूख से दुर्बल, बॉस की डलिया मे शरीर को सपिडित किये स्थित, भूख से म्लानेन्द्रिय सर्प के मुख मे रात के समय मूषक उसमें बिल बनाकर स्वयं चला गया। अतः तुम सब धैर्य रक्खो, मनुष्य की समृद्धि और विपत्ति, जीवन और मरण का कारण दैव है।[1]

मनुष्य के पास आठ गुण कहे गये हैं इनके होने पर ही वह गुणी माना जाता है। वे ये हैं (1) तरुणी स्त्रियों के साथ मधुर व्यवहार (2) शिष्ट समुदाय के साथ अनुकूल व्यवहार, (3) शत्रुओ पर पराकम दिखाना, (4) पूज्य एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों से नम्रता, (5) सज्जनों के साथ धर्मिष्ठता, (6) रहस्य जानने वालों के साथ उनके मनोनुकूल आचरण करना (7) अभिमानियों के साथ बहुविध मान करना (8) शठों के साथ शठता का व्यवहार करना चाहिये।[2]

जो लोग कपटी जनों के साथ कपट पूर्ण व्यवहार नहीं करते, वे पराभव को प्राप्त होते हैं, उन सरल प्रकृति लोगों को विश्वास उत्पन्न कर शठ, खुले शरीरवालों को बाण की भॉति नष्ट कर देते हैं।[3]

दैव के प्रतिकूल होने पर साधनों का आधिक्य भी निष्फल होता है। अस्त को प्राप्त होने वाले सूर्य को उसकी सहस्र किरणें भी अवलम्ब नहीं दे सकीं।[4]

---

1 सुलमाः पुरुषा राजन् सतत प्रियवादिन ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभा ।।
शुकसप्तति., श्लोक स0 325, पृष्ठस0 274

2 माधुर्यं प्रमदाजने सुललितं दाक्षिण्यमार्ये जने शौर्यं शत्रुषु मार्दवं धर्मिष्ठता साधुषु।
मर्मज्ञेष्वनुवर्तन बहुविध मान जने गर्विते शाठयं पापजने नरस्य कथिता. पर्यन्तमष्टौ गुणा.।।
शुकसप्ततिः, श्लोकसं0 119, पृष्ठसं0 104

3 व्रजन्ति ते मूढधिय. पराभव भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसवृताङ्गान्निशिताइवेषव ।।
·शुकसप्ततिः श्लोक स0 123, पृष्ठ सं0 106

4 प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यत. करसहस्रमपि।।
शुकसप्तति. श्लोक स0 143, पृष्ठ सं0 118

हे गजयूथनाथ! यूथ से वियोग होने के कारण मुँदे नेत्र वाले। इस प्रकार चिन्ता क्यो कर रहे हो? जो कुछ प्राप्त रहा है वह ग्रास ग्रहण करो और जल पियो। दुःख–सुख तो भाग्यवश आते ही रहते हैं।[1]

जो कोई जैसा करे उसके साथ वैसा ही करो–कोई उपकार करता है तुम भी प्रत्युपकार करो, हिंसा करता है तुम प्रतिहिंसा करो। तुमने पंख नोच डाले, मैंने सिर को रोमहीन कर दिया अर्थात् जो कोई जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा व्यवहार करो।[2]

बुद्धिमान बिना प्रयोजन समझे अथवा प्रयोजन समझ लेने पर सहसा कोई बात न कहे क्योंकि विधाता अथवा दैव न जाने क्या करना चाहता हो।[3]

(स) शिक्षाप्रद सूक्तियाँ :

राम स्वर्ण का (मिथ्या) मृग नहीं जान पाये। नहुष ने पालकी में ब्राह्मणों को युक्त कर दिया। कार्तवीर्य को ब्राह्मण जमदग्नि से ही सवत्सा धेनु के हरने का विचार हुआ। युधिष्ठिर ने द्यूतक्रीडा में चारो भाई और रानी को दाँव पर लगा दिया। प्रायः विपत्ति के समय सत्पुरुष भी बुद्धिभ्रष्ट हो जाते है।[4]

अवश्य तुम जाओ–ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है, क्योंकि प्रिय की ओर जाते मन को तथा नीची भूमि की ओर बहते जल को कौन रोकने में समर्थ है।[5] संकेत रुप से

---

1 चिन्तामिमा वहसि कि गजयूथनाथयूथाद्वियोगविनिमीलितनेत्रयुग्म।
पिण्ड गृहाण पिब वारि यथोपनीतं दैवाद्भवन्ति विपद किल सम्पदो वा।।
शुकसप्तति, श्लोक सं0 159, पृष्ठ सं0 127

2 कृते प्रतिकृत कुर्या हिसिते प्रतिहिंसितम्।
त्वया लुञ्चापिता पक्षा मया लुञ्चापित शिर।
शुकसप्तति, श्लोक स0 331, पृष्ठ स0 277

3 प्रयोजनमविज्ञाय ज्ञात्वा चाथ मनीषिणा।
सहसैव न वक्तव्यमचिन्त्यो विधिनिर्णय।
शुकसप्तति, श्लोक सं0 331, पृष्ठ स0 277

4 रामो हेममृगं न वेत्ति नहुषो याने युनक्ति द्विजान्
विप्रादेव सवत्सधेनुहरणे जाता मतिश्चार्जुने।
द्यूते भातृचतुष्टय च महिषीं धर्मात्मजो दत्तवान्
प्राय. सतपुरुषोऽयनर्थसमये बुद्धया परित्यज्यते।।
शुकसप्तति, श्लोकस0 64, पृष्ठसं0 49

5 अवश्यमेव गन्तव्यं त्वयेत्थ मम निश्चय।
मनोऽभीष्टे पयो निम्ने गच्छत्क. प्रतिवारयेत्।।
शुकसप्तति, श्लोकस0 84, पृष्ठसं0 69

व्यक्त किए भाव को पशु भी ग्रहण कर लेता है। घोडे–हाथी संकेत द्वारा प्रेरित हो (मनुष्य अथवा भार को) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाते हैं पडित बिना कहे भाव को तर्क द्वारा जान लेता है क्योकि दूसरो के संकेतित अभिप्राय को जानना ही बुद्धि का फल है।[1]

नीच व्यक्ति के ससर्ग से मनुष्य का कल्याण नहीं होता। क्योंकि दुष्ट अत्यन्तप्रिय के विषय में भी अपना विकार ही दिखाता है।[2]

मन से विपरीत किए गये को जो सह सकता है और अर्थ त्याग कर सकता है वह मन के अनुकूल कार्य करता हुआ, कभी सज्जनों द्वारा निन्दित नहीं होता।[3]

(द) राजधर्म सम्बन्धी सूक्तियॉ :

ग्रन्थकार द्वारा "राजनियम" से सम्बन्धित सूक्तियॉ भी दर्शायी गयी हैं। यथा–राजा के प्रसन्न होने पर श्वेत छत्र, मनोरम अश्व, मदशाली गज प्राप्त होते हैं।[4]

राजा कोई साधारण व्यक्ति नही होता, यह अलौकिकरुप धारी होता है और तुम तो हे शत्रुओ को सन्ताप देने वाले! विकमादित्य (विक्रम में आदित्य से) यथार्थनामा हो।[5]

---

1 उदीरितोऽर्थ पशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्ति नोदिता.।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जन परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धय ।।
शुकसप्ततिः, श्लोक स0 86, पृष्ठ स0 70.

2 न नीचजनससर्गान्नरो भद्राणि पश्यति।
दर्शयत्येव विकृति सुप्रियेऽपि खलो यत.।।
शुकसप्तति', श्लोकसं0 126, पृष्ठसं0 109

3 सोढु त्यक्तुं च य शक्तो मनसा कृतमन्यथा।
मनोऽनुकूलता कुर्वन्न स निन्द्य. सदा सताम्।।
शुकसप्तति', श्लोकस0 114, पृष्ठस0 96

4 धवलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः।
सदा मताश्च मातङ्गा प्रसन्ने सति भूयतौ।।
शुकसप्तति., श्लोकस0 46, पृष्ठसं0 38

5 इन्द्रात्प्रभुत्व ज्वलनात्प्रताप क्रोध यमाद्वैश्रवणाच्च वित्तम्।
सत्त्वस्थिरे रामजनार्दनाभ्यामादाय राज्ञ क्रियते शरीरम्।।
शुकसप्ततिः, श्लोक सं0 49, पृष्ठ सं0 39.

राजदण्ड तथा विषय कार्य की सिद्धि में संशय होने पर जो सन्दिग्ध मन वाले राजाओं के संशय को दूर करने में समर्थ होते हैं वे प्रधानता (महत्ता) को प्राप्त होते हैं।[1] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ग्रंथकार को सामाजिक, राजनीतिक, शिक्षात्मक इत्यादि पक्षों का बहुत ही सूक्ष्मज्ञान था।

(य) अन्य पद्यात्मक सूक्तियाँ :

न पूजयन्ति ये पूज्यान्मान्यन्न मानयन्ति ये।
जीवन्ति निन्द्यमानास्ते मृताः स्वर्गं न यान्ति च।।[2]।।

जो अपने पूज्य जन की पूजा नहीं करते, जो अपने मान्य जन का सम्मान नहीं करते, वे (संसार में) निन्दित होते हुए जीते हैं और मरने के बाद स्वर्ग नहीं जाते हैं।

ब्याधेन बोधितस्तेन स ययौ गृह्मात्मनः।
अभवत्कीर्तिमॉल्लोके परतः कीर्तिभाजनम्।।[3]।।

इस प्रकार उस व्याध से समझाया गया वह अपने घर गया (तदनुसार माता–पिता की सेवा कर) ससार में कीर्तिमान हुआ और मरने के बाद भी अपने यशः शरीर से अमर हो गया।

तावत्पिता तथा बन्धुर्यावज्जीवति मानवः।
मृतो मृत इति ज्ञात्वा श्रणात्स्नेहो निवर्तते।।[4]

1 राजग्रहे समायाते विमये कार्यसशये।
सन्दिग्धमनसां राज्ञा प्रधाना. संशयच्छिदः।।
शुकसप्तति', श्लोक स0 47, पृष्ठ सं0 38
2 शुकसप्तति', श्लोक स0 5, पृष्ठ सं0 6
3 शुकसप्तति., श्लोक स0 6, पृष्ठ सं0 6
4 शुकसप्तति:, श्लोक स0 7, पृष्ठ स0 7

जब तक मनुष्य जीता रहता है तभी तक उसके पिता तथा बन्धु हैं—इन सबका स्नेह तभी तक रहता है। मनुष्य मर गया तो मृत जानकर (पिता बन्धु आदि का) स्नेह तत्क्षण समाप्त हो जाता है।

सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च भीरुत्वम्।

त भुवनत्रय तिलकं जननी जनयति सुत विरलम्।।[1]

जिसे समृद्धि में हर्ष, विपत्ति में विषाद, रण में कापुरुषता न हो, ऐसे त्रिभुवन श्रेष्ठ विरले पुत्र को माता पैदा करती है।

विद्यावतां महेच्छानां शिल्पविक्रमशालिनाम्।

सेवावृत्तिविदात्र्चैव नाश्रयः पार्थिवं विना।।[2]।।

विद्वानों, महत्वाकाङ्क्षियों, शिल्पियों, पवराक्रमशालियों, सेवावृत्ति के जानकार व्यक्तियों का, राजा के बिना आश्रय नहीं, राजा ही इनका आश्रय होता है।

ये जात्यादिमहोत्साहा नोपगच्छन्ति पार्थिवम्।

तेषामामरण भिक्षा प्रायश्चितं विनिर्मितम्।।[3]।।

उच्चकुल में उत्पन्न जो शक्तिशाली राजा के समीप नहीं जाता—उसे आश्रय नहीं बनाता, ऐसे व्यक्तियो का मरण पर्यन्त भिक्षा मॉगना ही प्रायश्चिश्चत विहित है।

दृष्टिपूतं न्सेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।

सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मन पूतं समाचरेत्।।[4]।।

आगे का स्थल नेत्र से देखकर पैर रखना चाहिए, वस्त्र से छना शुद्ध जल पीना चाहिए, सत्य से पवित्र वचन बोलना चाहिए और मन को जो अभीष्ट हो वही करना चाहिए।

---

1 शुकसप्तति', श्लोक स0 31, पृष्ठ स0 32
2 शुकसप्तति', श्लोक सं0 41, पृष्ठ स0 36
3 शुकसप्तति, श्लोक स0 42, पृष्ठ स0 36
4 शुकसप्तति, श्लोक स0 111, पृष्ठ सं0 93

सोपचाराणि वाक्यानि शत्रूणामिह लक्षयेत्।

अविचारितगीतार्थां मृगा यान्ति पराभवम्।।[1]।।

संसार में शत्रुओं के सत्कारपूर्वक वचनों को समझना चाहिए। गीत का प्रयोजन न सोचने के कारण ही मृग विपत्ति में फॅस जाते है।

चन्दनं शुचिवस्त्रं च पानीयं शुचि शीतलम्।

सेव्यमानोऽपि मधुरः शुचिर्जयति नान्यथा।[2]

ग्रीष्म ऋतु को सेवन किया जाता हुआ चन्दन, उज्जवल शीतल वस्त्र, पवित्र एवं शीतल जल, ओदन तथा चन्द्रमा ही जीतता है, अन्यथा वह जीता नहीं जा सकता।

नासाहसं समालम्ब्य नरो भद्राणि पश्यति।

साहसी सर्वकार्येषु लक्ष्मीभाजनमुत्तमम्।[3]

बिना साहस का आश्रय लिए मनुष्य का कल्याण नहीं होता। जो सब कामों में साहसी होता है वही लक्ष्मी को प्राप्त कर पाता है।

भूमेश्च देशस्य गुणान्वितस्य भृत्यस्य वा बुद्धिमतः प्रणाशे।

भृत्यप्रणाशे मरणं नृपाणां नष्टापि भूमिः सुलभा न भृत्याः।[4]

देश की भूमि तथा गुणशाली एवं बुद्धिमान् सेवक के विनाश में (भूमि का विनाश ठीक है किन्तु ऐसे सेवक का नहीं क्योंकि) ऐसे भृत्य का विनाश होने पर राजा का ही विनाश हो जाता है और नष्ट हुई भूमि पुनः मिल सकती है किन्तु ऐसे भृत्यों का विनाश होने पर पुनः मिलना सम्भव नहीं।

---

1 शुकसप्तति, श्लोक स0 122, पृष्ठ स0 106
2 शुकसप्तति., श्लोक स0 141, पृष्ठ स0 117
3 शुकसप्तति:, श्लोक स0 155, पृष्ठ स0 124
4 शुकसप्तति., श्लोक सं0 231, पृष्ठ स0 199

न वक्तव्य घ्रुवं देवि पाप दृष्ट श्रुत मया।

कथापि खलु पापानामलम श्रेयसे यतः।।[1]

मैने जो पाप देखा या सुना है, निश्चय रुप से उसे नहीं कहना चाहिए क्योंकि पापों की चर्चा भी निश्चय अहितकारक होती है।

तस्माद्यो भाषितु वेत्ति धर्मे चार्थे स्मरे तथा।

कस्तं धर्षयितु शक्तो नरेषु कमलानने।।[2]

हे कमलमुखि! धर्म–अर्थ–काम के विषय में जो मनुष्य बोलना जानता है उसे पुरुषों में कौन ऐसा है जो बल से जीत सकता है? अर्थात कोई नहीं।

मुण्डे मुण्डे मर्तिभिन्ना कुण्डे कुण्डे नवं पय.।

तुण्डे तुण्डे नवा वाणी गेहे गेहे पतिव्रता।।[3]

प्रत्येक मस्तिष्क में भिन्न–भिन्न मति होती है, विभिन्न जलाशय में विभिन्न जल होता है, विभिन्न मुख मे विभिन्न वाणी होती है, विभिन्न घर में विभिन्न पतिव्रता होती है।

गजाः सन्ति हयाः सन्ति विचित्राः सन्ति सम्पदः।

त्वदीये च मदीये च दुर्लभं भस्म याज्ञिकम्।।[4]

तुम्हारे तथा हमारे हाथी, घोड़े तथा विचित्र सम्पत्तियाँ हैं किन्तु यज्ञ का भस्म दुर्लभ होता है।

समयोचितमारम्भ कुरुते यस्तु कृत्यवित्।

सर्वदा तु फलं तस्य समयज्ञो हि शिष्यते।।[5]।।

---

1 शुकसप्तति, श्लोक स0 237, पृष्ठ स0 205
2 शुकसप्तति., श्लोक स0 239, पृष्ठ स0 208
3 शुकसप्तति, श्लोक स0 245, पृष्ठ सं0 213–214
4 शुकसप्तति:, श्लोक स0 249, पृष्ठ सं0 219–220
5 शुकसप्तति, श्लोक स0 278, पृष्ठ स0 237

इस प्रकार जो कृत्यवित् समयोचित कार्य करता है उसका यही फल होता है कि वह समय की परख वाला व्यक्ति कदापि नष्ट नहीं होता सदा जीवित रहता है।

गच्छ देवि न कर्तव्यो विलम्बः पुण्यकर्मणि

यदि वेत्सि भये कर्तुं सुबुद्धिर्हंसराडिव।[1]

देवि। यदि भय आ पड़ने पर सुबुद्धि हंसाधिपति की भाँति करना जानती हो तो जाओ, सत्कर्म में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

सर्वस्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।।

पितृक्रमागतायोध्या निर्धनापि सुखायते।।[2]

(श्री राम चन्द्र जी कह रहे हैं) हे लक्ष्मण! सर्वतः स्वर्णनिर्मित लङ्का मुझे पसंद नहीं, वंश परम्परा प्राप्त अयोध्या धन रहित भी मुझे सुखकर है।

समुद्रवीचीव चलस्वभावा. सन्ध्याभ्ररेखेव मुर्हूतरागाः।।

स्त्रियः कृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत्त्यजन्ति।।[3]

समुद्र के तरङ्ग के समान चञ्चलस्वभाव वाली सायंकालीन बादल के समान क्षणिक अनुराग रखने वाली स्त्रियाँ स्वार्थ सिद्ध करने के बाद अर्थ–शून्य पुरुष को निचोडे हुए महावर की भॉति त्याग देती हैं।

एताः प्रविश्य हृदयं सदयं नराणां ।

किं नाम वामनयना न समाचरन्ति।।[4]

ये स्त्रियॉ पुरुषों के दयालु हृदय मे प्रवेश कर मोहती हैं मतवाला बना देती हैं, तिरस्कार करती है, फटकारती हैं, सुख देती हैं, विषाद उत्पन्न करती हैं, ये कुटिल नेत्र वाली स्त्रियॉ क्या नहीं करती ?

---

1 शुकसप्ततिः, श्लोक सं0 310, पृष्ठ सं0 261
2 शुकसप्तति, श्लोक सं0 314, पृष्ठ सं0 263
3 शुकसप्तति, श्लोक स0 329, पृष्ठ सं0 275
4 शुकसप्तति', श्लोक स0 330, पृष्ठ स0 276.

तरुणी रमणी रतिरम्यतरा प्रमदा सुखदा च सदा समदा।

यदि सा सुभगा ह्रदये निहिता क्व जयः क्व जय. क्व जयः क्व जयः।[1]

युवावस्था को प्राप्त, रमण करने योग्य, रति से भी अधिक रम्य, सुख देने वाली, सदा काम–मद से युक्त सुन्दरी प्रमदा यदि ह्रदय में बस गयी तो फिर जय कहाँ? (तब तो महान व्यक्ति की भी पराजय निश्चित है)।

(र) **गद्यात्मक सूक्तियाँ :**

निजशरीरस्य कतिचिद्दिनस्थायियौवनस्य पुराषान्तररमणाद् गृहाण फलम्।[2]

अन्य पुरुष के साथ रमण करती हुई अपने शरीर, जिसका यौवन कतिपय दिनों तक ही स्थिर रहेगा का फल प्राप्त कर ले।

युक्तमिदं कर्तव्यमेव परं दुष्करं निन्दितं च कुलस्त्रीणाम्।[3]

कुल स्त्रियों (उच्चकुल में उत्पन्न हुई) के लिये यह कर्म दुष्कर एवं निन्दित है।

व्यसनागमे, यदा कस्यचिदुपरि विपद् आपतति तदा दुर्जना. दुष्टाः नित्यम्।[4]

विपत्ति आ पडने पर दुष्ट तमाशा ही देखना चाहते हैं (कोई सहायता नहीं करता)।

यो दान कुर्यात्स भवेत्सर्वसम्पदां स्थानम्।[5]

जो दान करता है वह सकल सम्पत्तियों का आगार होता है।

यतो राज्ञां दुष्टनिग्रह. शिष्टपालनं च स्वर्गाय।[6]

---

1 शुकसप्तति., श्लोक स0 338, पृष्ठ स0 280.
2 शुकसप्तति, पृष्ठ स0 7.
3 शुकसप्तति., पृष्ठ सं0 8.
4 शुकसप्तति., पृष्ठ सं0 9.
5 शुकसप्तति, पृष्ठ स0 16.
6 शुकसप्तति., पृष्ठ स0 20.

दुष्टों का दमन करना तथा शिष्टजनो का पालन करना राजा का धर्म है—इससे उसे स्वर्ग मिलता है।

यतो बालकादपि हितं वाक्य ग्राह्यम्।[1]

बालक से भी हितवाक्य ग्रहण करना चाहिए।

विद्वद्भिर्विपद्यप्युच्चैः स्थातव्यम्।[2]

विद्वानो को विपत्ति में भी प्रसन्न रहना चाहिये।

परं स्वामिरहितानां न क्वापि पूजा।[3]

राजा के बिना मनुष्य की कहीं पूंजा (सत्क्रिया, प्रतिष्ठा) नहीं होती।

यतो जनो धनमित्राः।[4]

धन के होने से ही उसके सब मित्र बनते हैं।

यतो हीनपुण्यो बुद्धया मुच्यते।[5]

जिसका पुण्य समाप्त हो जाता है उसे बुद्धि छोड़ देती है।

पित्राार्जित द्रव्यं भोगिनं कं न करोति।[6]

पिता द्वारा अर्जित धन किसे विलासी नहीं बना देता।

एकोऽपि त्वदीयः सुतः श्लाघ्यः।[7]

तुम्हारा एक ही पुत्र प्रशंसनीय है।

---

1 शुकसप्तति, पृष्ठ स० 22.
2 शुकसप्तति., पृष्ठ स० 31.
3 शुकसप्तति:, पृष्ठ स० 34.
4 शुकसप्तति, पृष्ठ सं० 43.
5 शुकसप्तति., पृष्ठ स० 49.
6 शुकसप्तति., पृष्ठ स० 52.
7 शुकसप्तति, पृष्ठ स० 120

कृतक मन्ये भयं योषिता।[1]

स्त्रियो का भय कृत्रिम मानता हूँ।

दुर्लभोऽय बुधः। सुलभाः खलु नार्य।[2]

यह विद्वान दुर्लभ है, नारियाँ तो सुलभ होती हैं।

ततः स्त्रीणां वशगः को न विडम्बितः।[3]

स्त्रियों के अधीन होकर कौन तिरस्कृत नहीं होता।

यतः सता सन्नतगात्रि सङ्गतं मनीषिभिः।[4]

सज्जनो के साथ सात पग चलने मात्र से अथवा सात वाक्य बोलने मात्र से मित्रता हो जाती है।

य. कश्चिद्धितं वाक्यं श्रृणोति करोति च स शर्मभाग्भवति।[5]

जो कोई हितवाक्य सुनता है और तदनुसार कार्य करता है वह इस लोक तथा परलोक मे कल्याण का भागी होता है।

सत्यस्य वाचो वक्ता श्रोता च न लभ्यते।[6]

सत्य की बात कहने वाला और सुनने वाला दोनो नहीं मिलते।

(ल) **"पद्यात्मक सूक्तियाँ "प्राकृत भाषा में" :**

छिज्जउ सीसं अह होउ बन्धणं चअउ सव्वहा लच्छी।

पडिवण्णपालणे सुपुरिसाणं जं होउ तं होउ।[1]

---

1 शुकसप्तति, पृष्ठ स0 233.
2 शुकसप्तति, पृष्ठ स0 234.
3 शुकसप्तति, पृष्ठ सं0 241
4 शुकसप्ततिः, पृष्ठ स0 265.
5 शुकसप्तति, पृष्ठ स0 272.
6 शुकसप्तति, पृष्ठ स0 273.

शीर्षं छिद्यताम् अपभवतु बन्धनं चलतु सर्वथा लक्ष्मीः।

प्रतिपन्नपालने सुपुरुषाणां यद् भवतु तद् भवतु।

अर्थात् स्वीकार किये गये कार्य को पूरा करने में सत्पुरुषों का जो हो वह हो, चाहे शिर कट जाय, बन्धन में पड जायँ अथवा लक्ष्मी चली जायँ परन्तु स्वीकृत का पालन करते हैं।

पिअर विढत्तइ दव्वडइ चुड्डिरि को ण करेइ।

सइँ बिढवइ सइँ भोजअइ विरला जणणि जणेइ।।[2]

पित्रार्जितं द्रव्य भोगिनं कं न करोति।

स्वयमर्जयति स्वयं भुङ्क्ते विरला जननी जनयति।।

पिता द्वारा अर्जित धन किसे विलासी नहीं बना देता। जो स्वयं धन पैदा कर उसका स्वयम् उपभोग करता है ऐसे पुत्र को कोई विरली माता ही पैदा करती है।

महिलारत्ता पुरिसा छेआ वि ण संभरन्ति अप्पाणं

इअरे उण तरुणीणं पुरिसा सलिलं व हत्थगअं।।[3]

(महिलारक्ता. पुरुषाश्छेका अपि न सम्भरन्ति आत्मानम्।

इतरे पुनस्तरुणीनां पुरुषा. सलिलमेव हस्तगतम्।।)

स्त्रियो में अनुरक्त नागरिक भी पुरुष अपने पर अधिकार नहीं रख पाते (स्त्री के वश में रहते हैं) और अन्य पुरुष स्त्रियों को हस्तगत जल ही होते हैं–जैसे अञ्जलिगत जल धीरे–धीरे बह जाता है उसी प्रकार वे स्त्रियों के हाथ में नहीं आते और स्वाधीन होते हैं।

---

1 शुकसप्ततिः, श्लोक स0 11, पृष्ठ स0 11.

2 शुकसप्तति, श्लोक सं0 67, पृष्ठ स0 52.

3 शुकसप्तति, श्लोक स0 109, पृष्ठ स0 87-88.

अहरं करं कवोलं थणजुअल णाहिमण्डलं रमणं।

इत्थिअजणसामण्णं हिअअं जं जस्स तं तस्स।।[1]

(अधरः कर. कपोलः स्तनयुगलं नाभिमण्डल रमणम्।

स्त्रीजनसामान्य हृदयं यद् यस्या तत् तस्याः।।)

अधर, कर, कपोल, स्तनयुगल, नाभिमण्डल और जघन प्रदेश ये सब तो सभी स्त्रियों में समान होते हैं किन्तु हृदय जो है वह जिस किसी के ही होता है—हृदय से प्रेम करने वाली प्रेयसी कोई ही होती है।

अचला चलन्ति पलए मज्जाअं साअरा विलंघन्ति।

गरुआ वि तह विकाले पडिवण्ण साध सिढिलेन्ति।।[2]

(अचलाश्चलन्ति प्रलये मर्यादां सागरा विलङ्घन्ते

गुरुका अपि तथा विकाले प्रतिपन्नसाधनं न शिथिलयन्ति।।)

प्रलय मे पर्वत चलते हैं, सागर भी मर्यादा त्याग देते हैं, किन्तु विपत्ति में भी महान व्यक्ति स्वीकृत के पालन को शिथिल नहीं करते।

* * * * *

1 शुकसप्तति, श्लोक स0 153, पृष्ठ स0 122.
2 शुकसप्तति, श्लोक स0 165, पृष्ठ स0 130.

सहायक पुस्तकों की सूची

क्रसं०	पुस्तक		लेखक व प्रकाशक
1	साहित्य दर्पण	:	विश्वनाथ, स० डा० निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार सुभाष बाजार, मेरठ
2.	काव्यालंकार	:	भामह
3.	काव्यालंकार	:	रूद्रट, व्याख्याकार श्री रामदेव शुक्ल 1966, चौखम्भा प्रकाशन
4	काव्यानुशासन	:	हेमचन्द्र 1964, श्री महावीर जैन विद्यालय, मुम्बई
5	काव्यादर्श	:	दण्डी
6	काव्यालंकार सूत्रवृत्ति	:	वामन व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर 1954, रामलालपुरी आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली – 6
7	धन्यालोक	:	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
8.	काव्यप्रकाश	:	आचार्य मम्मट, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
9.	नाट्य शास्त्र	:	भरत, चौखम्भा प्रकाशन
10	पुराण विमर्श	:	बलदेव उपाध्याय, द्वितीय संस्करण 1978, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
11.	पुराण पर्यालोचनम्	:	डा० श्रीकृष्ण त्रिपाठी, प्रथम संस्करण 1976, चौखभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
12.	भविष्य पुराण	:	खेमराज श्रीकृष्ण दास 1959, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई
13.	मार्कण्डेय पुराण– एकसांस्कृतिक अध्ययन	:	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रथम संसकरण 1961, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद
14.	महाभारत	:	गीता प्रेस, गोरखपुर

15. रामायण : गीता प्रेस, गोरखपुर

16. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास : डा० कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य संस्थान, इलाहाबाद

17 सस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला, 1960, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी

18. संस्कृत साहित्य का इतिहास : ए०बी० कीथ, मङ्गलदेव शास्त्री 1959, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी

19. सस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय, संवत् 2030, वाराणसी

20. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : रामजी उपाध्याय, विक्रमाब्द 2018, रामनारायण लाल वेणीमाधव, इलाहाबाद

21. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय 1953, शारदा मन्दिर, बनारस

22. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : चन्द्रशेखर पाण्डेय, शान्तिकुमार नानूराम व्यास, पंचदश संस्करण 1982, साहित्य निकेतन, कानपुर

23 संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास : डा० जयकिशन खण्डेलवाल 1970, रवीन्द्र प्रकाशन पाटनकर बाजार, ग्वालियर – 1

24 संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास : कृष्ण चैतन्य 1965, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी

25. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक, इतिहास : डा० बाबूराम त्रिपाठी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

26. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक, इतिहास : डा० सत्यनारायण पाण्डेय 1975, साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ

27. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर : ए०ए० मैक्डानल 1899

28 हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर : सुशील कुमार डे 1947, कलकत्ता युनिवर्सिटी प्रेस

29. कहानी का रचना – विधान : डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा 1975, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

30. कथा के तत्व : डा० देवराज उपाध्याय

31. आधुनिक संस्कृत साहित्य : **डा० हीरालाल शुक्ल, प्रथम संस्करण** 1971, रचना प्रकाशन, 45 ए, खुल्दाबाद, **इलाहाबाद**

32. अग्नि पुराण : चौखम्भा प्रकाशन

33 शुकसप्तति. : चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत् 2023

34. छन्दोलंकारसौरभवम् : अक्षयवट प्रकाशन, 26 बलरामपुर, हाउस, इलाहाबाद

* * * * *